जनवरी-२०२५ ◆ वर्ष १३ ◆ अंक ०१ ◆ उदयपुर

ओ३म्

सत्यार्थ सौरभ

मासिक
जनवरी-२०२५

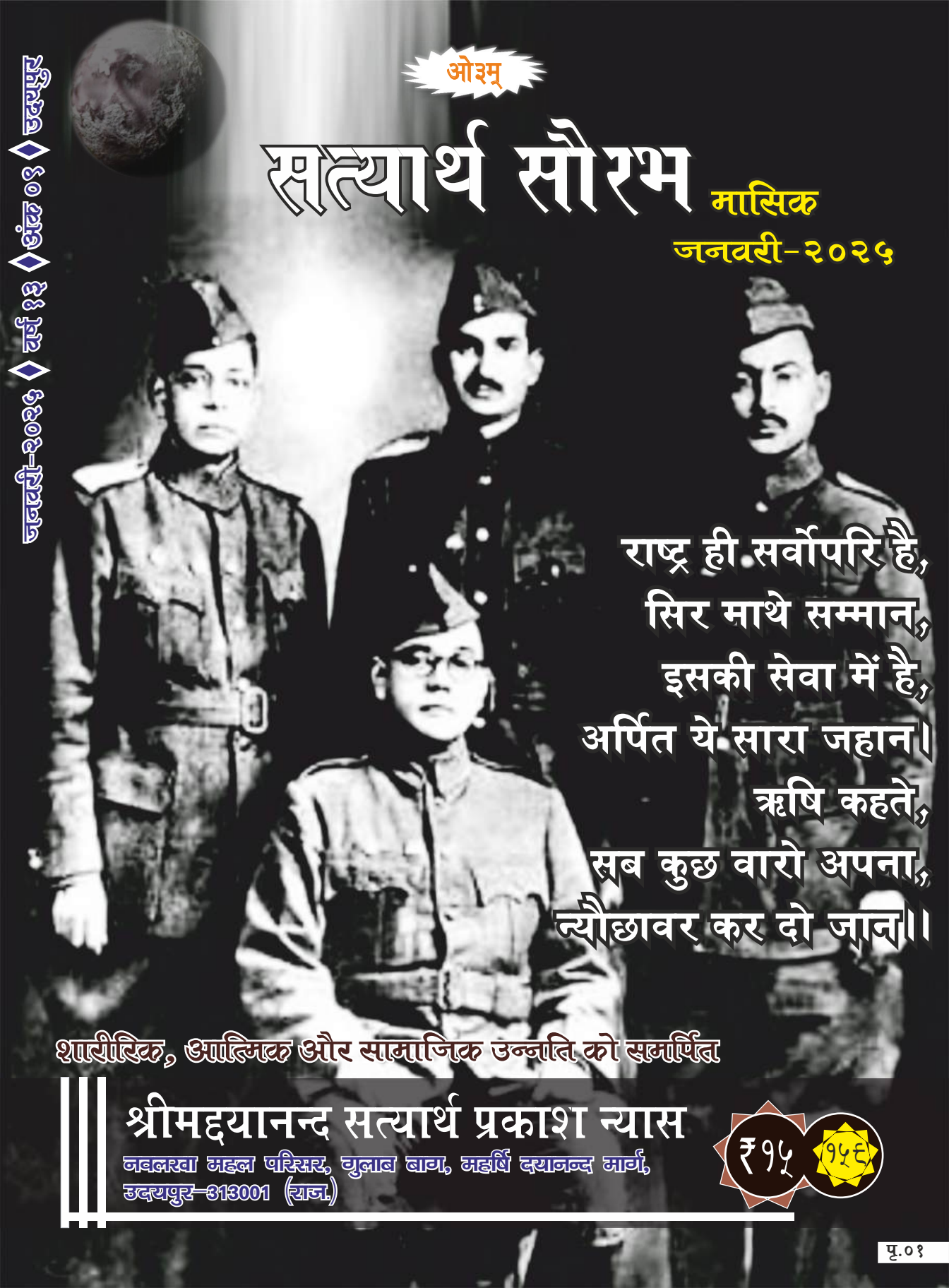

**राष्ट्र ही सर्वोपरि है,
सिर माथे सम्मान,
इसकी सेवा में है,
अर्पित ये सारा जहान।
ऋषि कहते,
सब कुछ वारो अपना,
न्यौछावर कर दो जान।।**

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति को समर्पित

श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास
नवलखा महल परिसर, गुलाब बाग, महर्षि दयानन्द मार्ग,
उदयपुर–313001 (राज.)

₹ १५ १५६

भारत के सरताज

महाशय राजीव गुलाटी
चेयरमैन, महाशियाँ दी हट्टी (प्रा०) लि०

MDH मसाले

सेहत के रखवाले असली मसाले सच-सच

For More Information Visit us on :

mdhspicesofficial | mdhspicesofficial | mdhspicesofficial | SpicesMdh

www.mdhspices.com

SCAN FOR MDH ORIGINAL RECIPES

सत्यार्थ प्रकाश की शिक्षाओं को अपने आँचल में समेटे, सम्पूर्ण परिवार के लिए, हर आयु समूह के लिए, पठनीय और समर्पित

न्यास का मासिक मुखपत्र

सत्यार्थ सौरभ

प्रमुख संरक्षक – सत्यार्थ सौरभ

डॉ. सुखदेव चन्द सोनी (अमेरिका)

परामर्शदाता संपादक मण्डल

डॉ. महावीर मीमाँसक

डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

डॉ.सोमदेव शास्त्री

डॉ. रघुवीर वेदालंकार

आचार्य वेदप्रिय शास्त्री

सम्पादक

अशोक आर्य

प्रबन्ध सम्पादक

भवानी दास आर्य

प्रबन्ध सहयोग (ग्राफिक्स डिजाईनर)

नवनीत आर्य (मो. 9314535379)

व्यवस्थापक

भँवर लाल गर्ग

सहयोग	भारत	विदेश
संरक्षक	11000 रु.	$ 1250
आजीवन	1500 रु.	$ 300
पंचवर्षीय	600 रु.	$ 125
वार्षिक	150 रु.	$ 30
एक प्रति	15 रु.	$ 10

भुगतान राशि धनादेश/चैक/ड्राफ्ट श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास के पक्ष में बना न्यास के पते पर भेजें। अथवा यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया मेन ब्रांच दिल्ली गेट, उदयपुर
खाता संख्या : 310102010041518
IFSC CODE- UBIN 0531014
MICR CODE- 313026001
में जमा करा अवश्य सूचित करें।

सृष्टि संवत्
१९६०८५३१२५
पौष शुक्ल नवमी
विक्रम संवत्
२०८१
दयानन्दाब्द
२००

सत्यार्थ-सौरभ में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र उदयपुर ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

January - 2025

विज्ञापन शुल्क (प्रति अंक)

कवर 2 व 3 (भीतरी आवरण) रंगीन	5000 रु.
अन्दर पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	
पूरा पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	3000 रु.
आधा पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	2000 रु.
चौथाई पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	1000 रु.

समाचार २९

हलचल ३०

०४	वेद सुधा
१२	हम हैं मूर्खों के देश
१५	"ईश्वर सर्वशक्तिमान् है"
१६	सुखी कैसे रहें?
२१	महर्षि को सच्ची श्रद्धांजलि ऐसे दें?
२४	स्वास्थ्य- भोजन कैसे करें
२७	कथा सरित- कहानी दयानन्द की
२८	सत्यार्थ मित्र बनें

स्वामी — श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, नवलखा महल, गुलाब बाग, उदयपुर

वर्ष - १३ अंक -०९

मुद्रण — द्वारा - चौधरी ऑफसेट, (प्रा.लि.) ११-१२, गुरु रामदास कॉलोनी, उदयपुर

प्रकाशक

श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास

सत्यार्थ प्रकाश भवन, नवलखा महल, गुलाबबाग, उदयपुर (राजस्थान) 313001

(0294) 4017298, 09314535379, 7976271159

www.satyarthprakashnyas.org, E-mail : satyarthsandesh@gmail.com

स्वत्वाधिकारी, श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, उदयपुर की ओर से प्रकाशक, मुद्रक अशोक कुमार आर्य द्वारा निदेशक– मुकेश चौधरी, चौधरी ऑफसेट प्रा. लि., 11/12 गुरुरामदास कॉलोनी, उदयपुर से मुद्रित तथा कार्यालय श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, सत्यार्थ प्रकाश भवन, नवलखा महल, गुलाबबाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, उदयपुर–313001 से प्रकाशित, सम्पादक–अशोक कुमार आर्य

ओ३म्

वेद सुधा

न तत्र सूर्य्यो भाति

ओ३म यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्य्या अनु न जातमष्ट रोदसी ।। - सा. उ. २/२/११/१ (८६२)

शब्दार्थ– हे (इन्द्र) परमैश्वर्यसम्पन्न! अनन्त शक्ति सम्पन्न भगवन्! **(यत्)** चाहे तो **(ते)** तेरे **(शतम्)** सैंकड़ों **(द्यावः)** द्यु-लोक, प्रकाशपुंज हों **(उत)** अथवा **(शतम्)** सैंकड़ों **(भूमोः)** भूमियाँ भी **(स्यु)** हों किन्तु हे **(वज्रिन्)** वारक शक्ति वाले प्रभो! ये सब **(रोदसी)** लोक-लोकान्तर तथा **(सहस्रम्)** हजारों **(सूर्याः)** सूर्य्य **(जातम्)** सर्वत्र विद्यमान् **(त्वा)** तुझको **(न)** नहीं **(अनु+अष्ठ)** पहुँच पाते।

व्याख्या– ससार में दो प्रकार के लोक हैं- १. स्वतः प्रकाश और २. परतः प्रकाश। सूर्य स्वतः- प्रकाश है; और भूमि-चन्द्रादि परतः-प्रकाश हैं, ये सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। वेद की परिभाषा में इन्हें द्यौ और पृथिवी, द्यावापृथिवी, द्यौ और भूमि, द्यावाभूमि, सूर्य्य और चन्द्र आदि विविध नामों से पुकारा जाता है। इनकी महिमा तो देखिये। भूमि पर से करोड़ों वर्षों से मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट-पतंग, सरीसृप, व्याल, भुजंग आदि नाना प्राणी अपनी भोग्य सामग्री ले रहे हैं, किन्तु माता वसुन्धरा आज तक भी विश्वम्भरा बनी हुई है, आगे भी बनी रहेगी। भूमि का एक नाम 'रसा' है, सचमुच मधुर, तिक्त, अम्ल, कटु, कषाय आदि सारे रस भूमि में हैं। सोना-चाँदी-लोहादि धातु उपधातुओं की खान भी यही है। कहीं संगमरमर पत्थर है, कहीं चिकनी मिट्टी है, कहीं रेत है। कहीं छह मील ऊँचा पर्वत मानो आकाश से बातें करने को सिर उठाये खड़ा है, कहीं उतना ही गहरा सागर है। कहीं नदी-नालों की कलकल ध्वनि है, तो कहीं समुद्र में उत्तुंग तरंगें उठ रही हैं। कहीं सस्यश्यामला मनोहारिणी रम्या मही है तो कहीं तृणविहीन बालुकामय जलशून्य प्रदेश है। संसार के आरम्भ से लेकर आज तक के सारे वैज्ञानिक अपनी शक्ति लगा रहे हैं, किन्तु इस ससीम, परिच्छिन्न, सान्त एक भूमि की सीमा= परिच्छेद= अन्त नहीं पा सके और यदि ये सैकड़ों हों तो फिर इनकी कितनी महिमा, कितनी गरिमा होगी? मनुष्य इसकी कल्पना नहीं कर सकता।

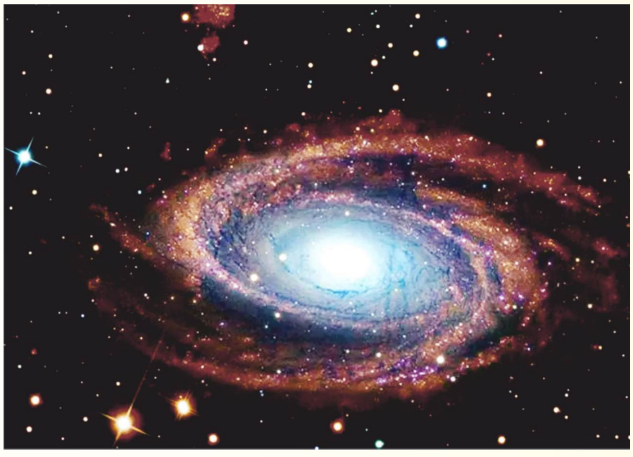

आओ, द्यौ का तनिक विचार करें। भूमि जहाँ एक क्षुद्र-सा टापू है, वहाँ द्यौ एक विशाल सागर है। हमारा प्रतिदिन का परिचित सूर्य्य भार में पृथिवी मे साढ़े चार लाख गुना भारी बताया जाता है। कहा जाता है इस सूर्य्य में हमारी पृथिवी की-सी तेरह लाख पृथिवियाँ समा सकती हैं। यह महान् सूर्य्य जिस से हमारी पृथिवी उत्पन्न हुई है, द्यौरूपी विशाल सागर में एक तुच्छ कमल-सा है। ऐसे क्या इससे भी बड़े असंख्य सूर्य्य इस द्यौ-सागर में टिमटिमा रहे हैं कहो, या चमचमा रहे हैं कहो।

क्या इनकी शक्ति की कल्पना कर सकते हो? आः !!! वेद कहता है, अनन्त द्यौ और अनन्त भूमि तथा असंख्य सूर्य्य और लोक मिलकर भी उस महान् भगवान् को नहीं पहुँच पाते, अर्थात् उसके सामने यह सारा विशाल

संसार तुच्छ है। वेद ने स्पष्ट कहा है-

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः। - यजुर्वेद ३१-३

यह सारा संसार उसकी महिमा का पसारा है, वह पूर्ण तो है, इस से बड़ा और न्यारा भी है।

भगवान् ने इस जहान को पैदा किया है, जैसा कि वेद ने कहा है-

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः। - ऋग्वेद १०/१९०/३

जगन्निर्माता ने पूर्व की भाँति सूर्य्य, चन्द्र, द्यौ, अन्तरिक्ष, पृथिवी और स्वः= आनन्द की रचना की। बनी हुई वस्तु के बनाने वाले को कैसे पावें? इसीलिए कठ ऋषि ने कहा-

न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ - कठोपनिषद् ५/१५

न वहाँ सूर्य्य चमकता है, न चाँर-तारे, न ही बिजुलियाँ चमकती हैं, यह अग्नि तो कहाँ से? उसकी चमक के पीछे ही सभी चमकते हैं। उस के प्रकाश से यह समस्त जगत् प्रकाशित होता है। सभी उसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, तो स्पष्ट है कि ये सब मिलकर उसकी बराबरी नहीं कर सकते। उसकी तुलना का कोई पदार्थ इस ब्रह्माण्ड में नहीं है। ये सब मिलकर भी सीमा वाले हैं, और वह है असीम।

अतएव वह- **विश्वस्य मिषतो वशी।** - ऋग्वेद १०/१९०/२

सभी गति करने वालों को वश में करने वाला है, नियन्त्रणकर्त्ता है। जड़-चेतन, स्थावर-जंगम, चर-अचर सभी उसके शासन में चलते हैं।

इस प्रकार उसे अप्रतर्क्य समझकर महात्मा चुप हो जाते हैं। ससीम असीम का वर्णन कैसे करें? केवल अनुभव कर सकता है, उसका वर्णन नहीं कर सकता।

वे. शा. स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ
सम्पादक- आचार्य पण्डित हरिदेव आर्य
साभार- स्वाध्याय-सन्दोह

आजीवन सत्यार्थ मित्र

सत्यार्थमित्र योजना में प्रतिवर्ष 5100 रुपए देने के क्रम में कुछ बन्धु प्रतिवर्ष रिन्यूअल कराने के झंझट से विरत रहना चाहते हैं, अतः न्यास ने अपनी पिछली बैठक में यह निश्चय किया है कि आजीवन सत्यार्थमित्र के रूप में जो भाई बहिन रु. 51000 एकमुश्त जमा करा दें तो उनका यह सहयोग आजीवन सत्यार्थमित्र के रूप में मान्य होगा। समर्थ आर्यजन इस दिशा में सकारात्मक सहयोग करने का श्रम करें।

सत्यार्थप्रकाश प्रचार सहयोग निधि

सत्यार्थ प्रकाश से उत्कृष्ट कोई ग्रन्थ नहीं जिसके प्रकाशन में आपकी पुण्य दान राशि का प्रयोग हो। सत्यार्थ प्रकाश प्रचार हेतु, कम राशि में अधिक संख्या में यह महान् ग्रन्थ जन-जन के हाथों में पहुँच सके, एतदर्थ निम्न योजना निर्मित की गई है-

सत्यार्थप्रकाश के प्रचार हेतु कृपया निम्नानुसार सहयोग कर लागत मूल्य से आधी कीमत में सत्यार्थप्रकाश का दिया जाना सुनिश्चित करें। आपके द्वारा सहयोगार्थ प्रदान की गई राशि के समक्ष अंकित प्रतियों पर आपका अथवा आपके किसी प्रियजन का चित्र ग्रन्थ के कवर पर दिया जावेगा।

1000 प्रतियों के प्रकाशन हेतु 25000 रुपये का दान देने का श्रम करें। 10 प्रतियाँ निशुल्क आपके पास भेजी जाएँगी।

आपका दान आयकर अधिनियम की धारा ८० जी के अन्तर्गत करमुक्त होगा। राशि न्यास के नाम ड्राफ्ट या चैक द्वारा भेजें अथवा यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, उदयपुर खाता क्रमांक 310102010041518, IFSC-UBIN 0531014 में जमा कर सूचित करें।

अशोक आर्य, अध्यक्ष-न्यास | **भवानीदास आर्य**, मंत्री-न्यास | **डॉ. अमृत लाल तापड़िया**, संयुक्तमंत्री-न्यास

गाँधी जी और सुभाष बाबू

कांग्रेस प्रारम्भ से ही अपने संगठन में लोकतांत्रिक व्यवस्था होने का दावा करती रही है परन्तु तथ्य इसके विपरीत हैं। कांग्रेस में गाँधी जी के आने के बाद तो यह स्थिति और स्पष्ट दिखती है। गाँधी जी जिस प्रकार लोकप्रिय हुए उसका परिणाम सम्पूर्ण कांग्रेस का उनके समक्ष नतमस्तक हो जाना था। ऐसे अनेक महत्वपूर्ण अवसर आपको दिखेंगे जहाँ लोकतांत्रिक प्रक्रिया के विपरीत जाकर गाँधी जी की इच्छा ही कांग्रेस के लिए निर्धारक बन गयी। १९३८ में हरिपुरा में सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष बने। परन्तु १९३९ के अधिवेशन में गाँधी नहीं चाहते थे कि सुभाष कांग्रेस अध्यक्ष बनें। इसके लिए उन्होंने अनेक प्रयास किये। (कोई यह कहे कि सुभाष को दुबारा अध्यक्ष नहीं बनना चाहिए तो उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि जवाहर लाल नेहरु इससे पहले तीन बार अध्यक्ष बन चुके थे।) गाँधी जी ने सरदार पटेल के जरिए सुभाष बाबू के भाई शरत चन्द्र बोस को तार भिजवाया और सुभाष को निर्वाचन पर दुबारा सोचने के लिए राजी करने को कहा। सुभाष अपना इरादा पक्का कर चुके थे। इस चुनाव के बारे में 'कांग्रेस का इतिहास' के लेखक डॉ. पट्टाभि सीतारमैया लिखते हैं- यद्यपि पण्डित जवाहरलाल नेहरू तीन बार कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए तो इसका कारण यह था १९२९ में मोतीलाल जी की इच्छा थी, १९३६ में देश इसके लिए लालायित था और ८ महीने बाद फैजपुर में गाँधी जी इसके लिए उत्सुक थे, शायद ही कोई व्यक्ति जवाहरलाल जी पर आरोप कर सके कि वह खुद इस पद के लिए उत्सुक थे। इसलिए सवाल खास तौर पर गाँधी जी की स्वीकृति का था। सभी जानते हैं कि गाँधी जी के कहने पर ही सुभाष बाबू को हरिपुरा अधिवेशन का अध्यक्ष चुना गया था। इस स्थल पर और कुछ कहना नाजुक हो जाता है फिर भी राष्ट्र की माँग और अभी तक ब्रिटेन द्वारा उसकी पूर्ति न होने के कारण आवश्यक यह था कि राष्ट्रपति का पद किसी मुसलमान को दिया जाए। (इसलिए गाँधी जी चाहते थे कि सुभाष अध्यक्ष न बने) देश

को मौलाना अबुल कलाम आजाद के रूप में ऐसा मुसलमान मिल भी सकता था। वह एक बार १९२३ में कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके थे किन्तु वह विशेष अधिवेशन था। गाँधी जी का विचार था कि त्रिपुरा में कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद के होने से साम्प्रदायिक समस्या को हल में करने में मदद मिलेगी। (तुष्टीकरण के बीज?) यही कारण था कि उन्होंने सुभाष बाबू के राष्ट्रपति के पद के लिए फिर से खड़े होने को प्रोत्साहन नहीं दिया था, इसके बावजूद मित्रों ने सुभाष बाबू के नाम को प्रस्तावित कर दिया और सुभाष बाबू ने खड़ा होना स्वीकार कर लिया। सुबह मौलाना की उम्मीदवारी की भी नियमित रूप से घोषणा की गई।' डॉक्टर पट्टाभि सीतारमैया ने जो कुछ आगे लिखा है उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मौलाना ने अपनी उम्मीदवारी से अपना नाम वापस ले लिया और तब गाँधी जी के कहने से सुभाष बाबू के विरुद्ध डॉक्टर पट्टाभि सीतारमैया ने चुनाव लड़ा। सुभाष बाबू शताधिक मतों से जीत गए तो इस जीत को आसानी से स्वीकार नहीं किया गया। क्यों? क्योंकि यह गाँधी जी की इच्छा के विरुद्ध था। और जब परिणाम आने पर गाँधी जी ने घोषणा कर दी कि सुभाष के प्रतिस्पर्धी की पराजय को वह अपनी पराजय मानते हैं तो देश में हलचल मच गई। जिन लोगों ने सुभाष बाबू के पक्ष में मत दिया था वे गाँधी जी और उनके नेतृत्व में विश्वास प्रकट करने लगे।

डॉक्टर पट्टाभि सीतारमैया आगे लिखते हैं कि- 'इससे देश में हलचल मच गई इससे एक परेशान करने वाली स्थिति उत्पन्न हो गई। राष्ट्रपति के पद के लिए पहले २९ जनवरी १९३९ को मत लिया गया था। एक सप्ताह के भीतर स्थिति में परिवर्तन हो गया। यह ठीक है कि कांग्रेस के डेलीगेटों ने अपने उम्मीदवार के लिए वोट दिए थे किन्तु बाद में उनमें से कितने ही दूसरे पक्ष में चले गए और बाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में उन्होंने गाँधी जी का समर्थन कर दिया।' वे आगे लिखते हैं 'इससे नए अध्यक्ष के लिए बड़ी विकट समस्या उत्पन्न हो गई क्योंकि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में उनका अब अल्पमत हो गया।' यह स्थिति बताती है कि लोकतांत्रिक पद्धतियों का ढोल भले ही पीटा जाता रहा हो परन्तु गाँधी जी की स्थिति एक अधिनायक के रूप में ही थी। वे येन-केन-प्रकारेण अपनी बात मनवा लिया करते थे।

गाँधी सुभाष को समर्थन नहीं दे रहे थे तो उनके भक्त क्यों पीछे रहें। बल्लभ भाई पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, भूला भाई देसाई भी सुभाष के अध्यक्ष बनने के खिलाफ थे। इनको सुभाष की विजय का अन्देशा था। अतः पहले ही सुभाष की शक्तियों पर कैंची चलाने का प्रयास किया गया। चुनाव २९ जनवरी को होने थे। २४ जनवरी को एक संयुक्त बयान में इन सदस्यों ने कहा- 'अध्यक्ष पद के चुनाव का कांग्रेस की नीति या कार्यक्रमों से कोई लेना देना नहीं है। वो काम कांग्रेस की विभिन्न समितियाँ करती हैं। जबकि अध्यक्ष एक सांविधानिक मुखिया है, जो कांग्रेस की सोच का प्रतिनिधित्व करता है।' यह घोषणा कांग्रेस के संविधान के विरुद्ध थी। परन्तु उक्त सभी सदस्य गाँधी जी के गहरे प्रभाव में थे। सुभाष ने वर्किंग कमिटी के इस हस्तक्षेप का विरोध किया और साथ ही अध्यक्ष को सिर्फ सांविधानिक मुखिया मानने से इनकार कर दिया।

वस्तुतः गाँधी जी १९३४ में कांग्रेस की प्राथमिक सदस्यता छोड़ चुके थे। लेकिन पार्टी के हर कदम पर उनकी छाप साफ जाहिर थी। उनके विरुद्ध कुछ हो जाना कांग्रेस में असाधारण था। इसके बाद से सुभाष का विरोध अन्यान्य प्रकार से किया जाने लगा। वर्धा में वर्किंग समिति के १३ सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया।

इसके बाद ८ से १२ मार्च, १९३९ तक त्रिपुरी (जबलपुर) में कांग्रेस का अधिवेशन रखा गया। गाँधी जी यहाँ

मौजूद न होकर भी मौजूद थे। यहाँ पण्डित गोविन्द बल्लभ पन्त ने ऑल इण्डिया कांग्रेस कमिटी के १६० सदस्यों की तरफ से एक प्रस्ताव पेश किया। जिसमें लिखा था कि कांग्रेस गाँधी के रास्ते पर ही आगे बढ़ेगी। और वर्किंग कमिटी भी उनकी इच्छा अनुसार बनाई जाएगी। १० मार्च को सब्जेक्ट कमेटी ने १३५ के मुकाबले २१८ वोटों से इस प्रस्ताव को पारित कर दिया। ये बात कांग्रेस के संविधान, अनुच्छेद १५ के खिलाफ थी। जिसमें साफ लिखा था कि वर्किंग कमिटी बनाने का अधिकार अध्यक्ष के पास होगा।

इस अधिवेशन में सुभाष समर्थकों और विरोधियों में खुलकर हंगामा हुआ। सुभाष स्ट्रेचर पर आये तो तंज कसा गया की बगल में प्याज तो नहीं दबा रखा है। सुभाष विरोधियों की मानसिकता आप देख सकते हैं। इस हंगामे की खबर पूरे देश में गूँजी। टैगोर ने गाँधी से हस्तक्षेप करने को कहा। लेकिन गाँधी तब अनशन पर बैठे हुए थे। टैगोर ने अपने पूर्व सचिव अमिय चक्रवर्ती को लिखा- 'जिस पवित्र मंच से आजादी के मंत्र गूँजने चाहिए वहाँ फासिस्ट दाँत उभर आए हैं।'

गाँधी जी उसी व्यक्ति को कांग्रेस में प्रमोट करना चाहते थे जो उनके मार्ग का पूर्ण अनुयायी हो। सुभाष उनमें से नहीं थे। यही सुभाष-विरोध का कारण था।

अब तक सुभाष समझ गए थे कि वर्त्तमान परिस्थितियों में वे काम नहीं कर सकेंगे। अतः २९ अप्रैल १९३९ को

स्वाभिमानी सुभाष ने कांग्रेस का अध्यक्ष पद छोड़ दिया। और फिर 'ऑल इण्डिया फॉरवर्ड ब्लॉक' नाम से एक नई पार्टी का गठन कर लिया। यहाँ से गाँधी और बोस के रास्ते पूरी तरह अलग हो गए थे। दोनों एक दूसरे के प्रति आदर का भाव रखते रहे। इसे हम निम्न अवतरण में देख सकते हैं।

६ जुलाई, १९४४ को आजाद हिन्द रेडियो पर एक जरूरी ब्रॉडकास्ट होना था। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने राष्ट्र के नाम अपना सम्बोधन शुरू किया।

'भारत की आजादी की आखिरी लड़ाई शुरू हो चुकी है। आजाद हिन्द फौज हिन्दुस्तान की धरती पर लड़ रही है। सारी दिक्कतों के बावजूद आगे बढ़ रही है। ये हथियारबन्द संघर्ष तब तक चलेगा जब तक कि ब्रिटिश राज को देश से उखाड़ नहीं देंगे। दिल्ली के वॉयसराय हाउस पर तिरंगा फहरेगा।'

सुभाष बाबू ने आगे कहा- 'राष्ट्रपिता, हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई में हम आपका आशीर्वाद माँगते हैं।' यह राष्ट्रपिता का सम्बोधन गाँधी जी के लिए था। और जहाँ तक गाँधी जी की बात है उन्होंने सुभाष के विमान दुर्घटना की खबर मिलने पर कहा- 'उन जैसा दूसरा देशभक्त नहीं। वह देशभक्तों के राजकुमार थे।'

२४ फरवरी, १९४६ को हरिजन में अपने लेख में गाँधी लिखते हैं- 'आजाद हिन्द फौज का जादू हम पर छा गया है। नेताजी का नाम सारे देश में गूँज रहा है। वे अनन्य देशभक्त हैं। (वर्तमान काल का प्रयोग जानबूझकर कर रहा हूँ)। उनकी बहादुरी उनके सारे कामों में चमक रही है।'

इस प्रकार स्पष्ट है कि नेताजी का व्यक्तित्व और स्वतंत्रता संग्राम में उनकी महती भूमिका के कारण उनसे सहमति न रखने वाले भी उनके प्रति सम्मान रखने को विवश हो जाते थे।

- अशोक आर्य
सत्यार्थ प्रकाश भवन, नवलखा महल, उदयपुर
चलभाष- ०९३१४२३५१०१, ०८००५८०८४८५

मैं नवलखा महल हूँ

भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त कराने में आर्य समाज का महती योगदान था। राष्ट्र की बलि वेदी पर अपने प्राणों को आहूत करने वाले हुतात्माओं में आर्य नेताओं का नाम प्रथम पंक्ति में आता है। **'राष्ट्र मन्दिर' के रूप में मुझे स्वरूप प्रदान कर इन महात्माओं की स्मृतियों को सुदीर्घ करने का पुण्य कार्य आर्य जगत् के गौरव, दानवीर भामाशाह महाशय राजीव गुलाटी ने अपने ऊपर लिया है।**

जी हाँ! मैं उदयपुर का प्रसिद्ध नवलखा महल हूँ। मेरा निर्माण उदयपुर के महाराणा सज्जन सिंह जी ने करवाया था और मुझे यह गौरव प्राप्त है कि युगपुरुष, महान् धर्म संशोधक, प्रसिद्ध समाज सुधारक, वेदों के प्रकाण्ड पण्डित महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यहाँ लगभग साढ़े छः मास का प्रवास किया और उस अवधि में अपने कालजयी ग्रन्थ रत्न सत्यार्थ प्रकाश की रचना पूर्ण कर उसे प्रकाशित करने का उद्योग प्रारम्भ किया। कालान्तर में यह भवन शराब का गोदाम बन गया। उस समय राजस्थान के शेर कहे जाने वाले मुख्यमंत्री भैरोंसिंह शेखावत जी, जो महर्षि के प्रति अपार श्रद्धा रखते थे, ने इस जगह के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्य को समझा और महर्षि दयानन्द के द्वारा स्थापित आर्य समाज को इस उद्देश्य से सौंप दिया कि यहाँ एक ऐसा भव्य स्मारक बने जो महर्षि दयानन्द जी महाराज के मन्तव्यों और वेद के सिद्धान्तों को, वैदिक जीवन शैली को जन-जन तक पहुँचाने का साधन बन सके।

मुझे प्रसन्नता है कि मुझे संचालित करने वाले श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास ने बड़ी सुन्दरता के साथ, पुरुषार्थ के साथ इस कार्य को किया।

आज मेरी ख्याति विश्वभर में फैल रही है। उदयपुर आने वाले लोग और कहीं जाएँ न जाएँ परन्तु मुझसे मिलने अवश्य आते हैं, क्योंकि मेरी गोद में स्वयं ईश्वर की वाणी के मोती यत्र-तत्र-सर्वत्र करीने से सजे हुए हैं।

हम कौन थे, क्या हो गए, और क्या होंगे अभी इन सब प्रश्नों के उत्तर जितनी सरलता के साथ मेरे यहाँ मिलते हैं वह अद्भुत है, अकल्पनीय है।

आज वैदिक शिक्षाओं को प्रस्फुटित करता हुआ मेरा बाह्य स्वरूप, पंचमहायज्ञ वीथिका, राष्ट्र नायक वीथिका, वेद वृक्ष, संस्कार वीथिका, भव्यतम थिएटर, आर्यावर्त्त चित्रदीर्घा, ज्ञान स्तंभ, भारत गौरव दर्शन आदि-आदि विश्व मानवता का पथ प्रदर्शन कर रहे हैं।

परन्तु आज भी जिस कक्ष में महर्षि दयानन्द जी महाराज विश्राम करते थे, शयन करते थे, वहाँ तक

पहुँचने का मार्ग टूटा-फूटा असुरक्षित और गमनागमन के योग्य नहीं है, तो दूसरी ओर महर्षि का पवित्र शयन कक्ष भी अनेक दरारों से युक्त हो घोषणा कर रहा है कि वह कभी भी गिर सकता है। आखिर तो मैं १५० वर्ष से अधिक आयु का हो चला हूँ। अतः उस महामना की यादों को सुरक्षित करने का प्रयास यहाँ के संचालक न्यास को करना चाहिए।

मैं जानता हूँ कि अनेक आर्थिक कठिनाइयों से जूझते हुए भी जन सामान्य का या किसी भी सरकारी तंत्र का अर्थ सहयोग अत्यल्प प्राप्त होने पर भी यहाँ के संचालक श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास ने आर्यजनों से अर्थ सहयोग प्राप्त कर इसको मंत्रमुग्ध करने वाला स्वरूप दिया है।

परन्तु ऐसा ही स्वरूप महर्षि के शयन कक्ष का होना चाहिए ताकि व्यक्ति, उसके समक्ष दो मिनट बैठकर अपने देश के, समाज के भूत-भविष्य और वर्तमान पर विचार करे, और समस्याओं का समाधान महर्षि जी की मेधा बुद्धि के आलोक में प्राप्त कर सके। ऐसा प्रकल्प बन सके इस हेतु भी पुरुषार्थ आवश्यक ही नहीं पुण्य कार्य भी है।

यह कार्य सुन्दरतम रुप में सम्पन्न हो इस हेतु 'राष्ट्र

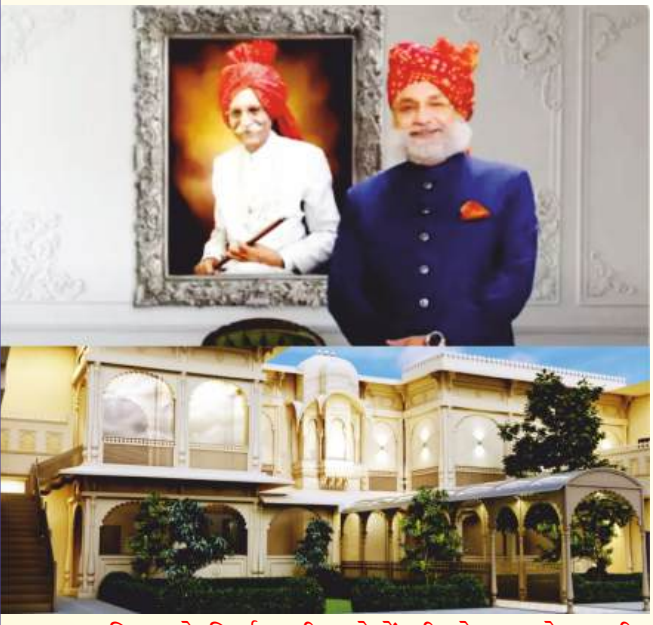

मन्दिर' के निर्माण की करोड़ों की योजना को दानवीर भामाशाह राजीव जी गुलाटी ने अपने हाथ में ले लिया है।

मेरे ही प्रांगण में न्यास ने १९९८ में एक भव्य यज्ञशाला का निर्माण किया। जिसमें उसी समय से प्रतिदिन प्रातः

और सायं सर्वश्रेष्ठ कर्म यज्ञ का सम्पादन किया जाता है। आवश्यकता है कि इस यज्ञशाला के भव्य स्वरूप के अनुरूप ही इसका भव्य गेट हो। आर्य जगत् के प्रमुख दानदाता माननीय एस. के. आर्य जी ने इसके लिए अर्थ सहयोग दिया है। ऐसे-ऐसे पुण्य आत्माओं के सहयोग से ही मेरा स्वरूप इस रूप में परिवर्तित होता जा रहा है, जिसकी शिक्षाओं का अनुगमन कर भारत विश्वगुरु के पद को प्राप्त कर सकता है। महर्षि दयानन्द जी महाराज की दो सौवीं जयन्ती के अवसर पर सार्वजनिक क्षेत्र में सेवा कार्य कर रहे सभी मनुष्यों ने ऐसे केन्द्रों की आवश्यकता पर बल दिया है जिसमें एक प्रमुख नाम पूज्य मोहन भागवत जी का है।

आर्य जगत् के भामाशाह स्वर्गीय पद्मश्री महाशय धर्मपाल जी आर्य न्यास के आजीवन अध्यक्ष रहे थे। यह न्यास का सौभाग्य है कि उनके भौतिक शरीर के न रहने पर भी, यह व्रत, अपने पिता के व्रतों का अनुसरण करने वाले आर्य पुत्र भामाशाह महाशय राजीव जी गुलाटी

ने अपने ऊपर ले लिया और न्यास को यह निर्देश दिया कि इस सारे निर्माण को इतनी मजबूती प्रदान करें कि सैकड़ों वर्षों तक यह गर्व से सर उठा कर खड़ा रहे और न केवल खड़ा रहे बल्कि उस विषपायी देवता महर्षि दयानन्द की स्मृतियों को मूर्त रूप में हमारे समक्ष रखे। आज बहुत कम लोगों को पता है कि देश को स्वतंत्र कराने में जिन महामनीषियों ने अपने जीवन को आहूत कर दिया उन्होंने यह प्रेरणा, यह क्रान्ति भाव, ऋषि दयानन्द से प्राप्त किए थे। आवश्यक है कि जन-जन तक भारत की स्वतंत्रता के मूल मंत्रदाता के व्यक्तित्व को प्रकाशित कर सत्य तथ्य को स्थापित किया जा सके। **इसके लिए जो भव्य योजना बनी है वह महाशय राजीव गुलाटी जी की कृपा से साकार होने जा रही है।**

मित्रों! अगर हम उद्योग न करें और यह भवन कालक्रम के थपेड़े खाता हुआ गिर जाए तो हमसे बड़ा पापी कोई नहीं होगा। इसलिए न्यास ने निश्चय किया कि हर आवश्यक मरम्मत इस प्रकार से की जाए कि यह भवन वर्षों वर्ष लोगों की आध्यात्मिक व सांस्कृतिक यात्रा का केन्द्र बना रहे। इसमें भारत वर्ष के हर उस व्यक्ति को जो वेद में, भगवान श्री राम में, गीता में, भगवान श्री कृष्ण में, विश्वास रखता हो उनको न्यास का सहयोगी बनना चाहिए। आवश्यक नहीं कि वे अपना अर्थ सहयोग ही करें, अपना मार्गदर्शन दें, रास्ते की रुकावटें कोई हों तो उनको दूर करने का प्रयत्न करें। इस प्रकार से प्रत्येक भारतवासी इस अमूल्य भवन को संरक्षित करने में और वैदिक दर्शन को प्रसारित करने में न्यास का सहयोगी बन सकता है। न्यास के इस पुण्य प्रयास को सभी लोगों को सहानुभूति पूर्वक इसी दृष्टि से देखना चाहिए, यह मेरा सन्देश भारत और भारतीयता में विश्वास रखने वाले हर जन को है, आशा है मेरी भावना को आप समझेंगे।

धन्यवाद

विनीत- नवलखा महल सांस्कृतिक केन्द्र
गुलाबबाग, उदयपुर

हम हैं मूर्खों के देश

[बन्दा-वैरागी-जीवन दर्शन]

सन् १९२४-२५ की बात है। पंजाब के एक नेता डाक्टर सत्यपाल बन्दा वैरागी को हिन्दू धर्म के विपरीत आचरण करने वाला कहते थे। डाक्टर साहब 'रौलेट एक्ट' आन्दोलन में विख्यात हुए थे और फिर पंजाब में लाला लाजपत राय के बराबर के नेता समझे जाते थे। भाई परमानन्द जी ने 'बन्दा वैरागी' के नाम से एक पुस्तक लिखी थी। उस पुस्तक में उन्होंने बन्दा वैरागी को हिन्दू धर्म के रक्षक की उपाधि से विभूषित किया। उसी पुस्तक पर विचार करते हुए डाक्टर साहब ने यह कहा था कि बन्दा वैरागी धर्म का शत्रु था।

यह विचार डाक्टर साहब के ही नहीं थे, वरन् देश में अन्य कोटि-कोटि हिन्दू, मुसलमानों और सिक्खों के भी थे। यह इसलिए कि बन्दा वैरागी ने मुसलमानों को अति निर्दयता से मरवाया था, ऐसा कहा जाता है।

बन्दा का कार्य और उसका मूल्यांकन

बन्दा ने क्या किया था? इसका मूल्यांकन करने के लिए उस काल की देश की अवस्था का अनुमान लगाना पड़ेगा। हिन्दुस्तान में मुगलों का राज्य स्थापित हुए पौने दो सौ वर्ष हो चुके थे और इस काल में कुछ ही वर्षों के काल को छोड़कर हिन्दुओं के साथ मुगलों का व्यवहार ऐसा रहा था मानो वे उनके क्रीतदास थे। स्वार्थी हिन्दुओं का ही यह चमत्कार था कि कोटि-कोटि हिन्दू एक आध लाख मुसलमानों से ऐसे शासन किए जाते थे, जैसे ये हिन्दू गाय, भैंसों के झुण्ड हों और मुगल सैनिक लाठी लिए ग्वाले उनको हाँकते हुए ले जाते हों। इस पौने दो सौ वर्ष के मुगल राज्य में जब-जब मुगल राज्य दृढ़ता से स्थापित हुआ, तब-तब मुगलों का हिन्दुओं पर अत्याचार भी बढ़ा। जहाँगीर और शाहजहाँ के राज्य मुगलों के भली-भाँति स्थापित राज्य माने जाते हैं और इन दिनों में ही पंजाब, महाराष्ट्र और राजस्थान में मुल्ला-मौलानाओं के अत्याचार बढ़ रहे थे।

अकबर राज्य के प्रारम्भिक काल में जब अकबर अपने राज्य को विस्तार दे रहा था, तब तो हिन्दुओं से कुछ सीमा तक सहयोग चलता था। उसी काल में हिन्दुओं से जजिया उठा लिया गया था। तीर्थ-यात्रा का कर हटा लिया गया था और कहा जाता है कि अकबर नगरकोट के देवी के मन्दिर में सोने का छत्र चढ़ा आया था। परन्तु ज्यों-ज्यों राज्य सुदृढ़ होता गया और यह दूर-दूर तक विस्तार पाता गया, हिन्दुओं का दास की भाँति उत्पीड़न प्रारम्भ हो गया था।

जहाँगीर का राज्य गुरु अर्जुनदेव के बलिदान से प्रारम्भ हुआ। फिर गुरु हरगोविन्द को बन्दी बना कर रखा गया। शाहजहाँ के काल में यह जोर-जुल्म जारी रहा। शाहजहाँ के विषय में स्कूलों में पढ़ाने वाले

इतिहास में भी यह लिखा मिलता है। शाहजहाँ पक्का सुन्नी मुसलमान था। वह धार्मिक पक्षपात करता था और कभी-कभी हिन्दुओं के साथ कठोर व्यवहार करता था। कहीं-कहीं औदार्य भी दिखाता था। यूरोपीय यात्री डैलावैली लिखता है कि खम्भात के हिन्दुओं से रुपया पाने पर उसने वहाँ गो-हत्या बन्द कर दी।

रुपया लेकर राजा की ओर से गौ-हत्या बन्द करने को उसकी उदारता बताई है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि जब और जहाँ वह उदार नहीं होता था, वहाँ क्या करता होगा?

शाहजहाँ की बीवी मुमताज़ महल के विषय में कहा जाता है कि वह अति क्रूर थी और विधर्मियों की निर्मम हत्या कराती थी। यहाँ तक कि शाहजहाँ की हिन्दुओं और ईसाइयों से निर्दयता में कारण वह ही कही जाती है।

शाहजहाँ के उपरान्त तो औरंगजेब का राज्य आया। इस राज्य काल में क्या हुआ? उसके विषय में डाक्टर आशीर्वादी लाल जी श्रीवास्तव अपनी पुस्तक The Mughul Empire के पृष्ठ ३३६ पर लिखते हैं। पुस्तक अंग्रेजी में है और उसका अनुवाद इस प्रकार है।

औरंगज़ेब राज्य के सम्बन्ध में इस्लामी सिद्धान्त पर विश्वास रखता था। वह ऐसे शासन में विश्वास रखता था, जिसमें शासक कुरान का कानून शासन में चलाए और वह देश को दारा-उल-हरब से दारा-उल-इस्लाम बना सके। वह इस्लाम को राज्य धर्म बनाना चाहता था और राज्य की पूर्ण शक्ति को अपने मजहब के प्रचार के लिए लगाता था।

उसने पुराने मन्दिरों की मरम्मत करने से मना कर दिया था। इसके कुछ ही काल उपरान्त सब प्रान्तों के हाकिमों को आज्ञा दी थी कि काफिरों के सब विद्यालय

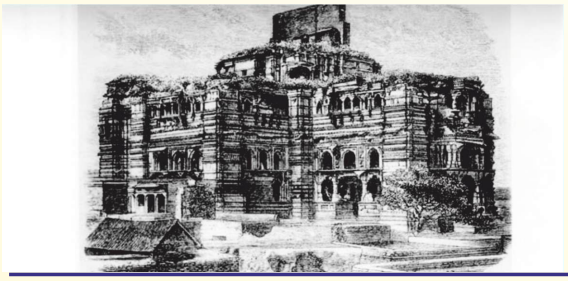

और मन्दिर गिरा दिए जाएँ और दृढ़ता से उनकी शिक्षा और पूजा-पाठ बन्द कराई जाए। 'मुहतासिव' घूमते रहते थे और वे हिन्दू मन्दिर और मूर्तियाँ विनष्ट करते रहते थे। सरकारी मन्दिर गिराने वालों की संख्या इतनी अधिक थी कि उन पर एक दरोगा नियुक्त होता था जो उनके कार्यों को दिशा देता था। यहाँ तक कि बनारस का विश्वनाथ का मन्दिर, मथुरा

का केशव देव का मन्दिर और पाटन का सोमनाथ का मन्दिर गिराकर भूमि में मिला दिए गए थे। मित्र हिन्दू राजाओं के राज्यों में भी, जैसे कि जयपुर में भी मन्दिर छोड़े नहीं गए। मन्दिर और मूर्तियों का तोड़ना प्रायः चलता था और उसके साथ उनको भ्रष्ट और अपमानित किया जाता था। प्रायः वहाँ गौ-हत्या की जाती और मूर्तियों को सड़कों पर दमूसों से कूट दिया जाता था।

सन् १६७८ में पुनः हिन्दुओं पर जजिया लगा दिया गया, जिससे इस्लाम फैले और काफिरों को पराजित किया जाए.....। हिन्दुओं ने चीख पुकार की, परन्तु सुना नहीं गया। उसने तीर्थ-यात्रा पर भी 'कर' लगा दिया। तीर्थ स्नान करने पर छः रुपये चार आने 'कर' देना पड़ता था। वस्तुओं पर 'कर' मुसलमानों से नहीं लिया जाता था और हिन्दुओं से पाँच प्रतिशत वसूल किया जाता था।

औरंगज़ेब ने मृत्युकाल (१७०७) तक और उसके पीछे बहादुरशाह और फरुखसीयर के राज्य में हिन्दुओं को किसी प्रकार की राहत नहीं दी गई।

इस काल में बन्दा वैरागी पंजाब में आया। उसके आने से पूर्व गुरु तेग बहादुर और गुरु गोविन्द सिंह

के अल्पवयस्क बच्चों का बलिदान हो चुका था।

पंजाब में औरंगज़ेब की धांधली मची हुई थी। तब बन्दा वैरागी ने क्या किया, यह विचारणीय रह ही नहीं जाता।

विचारणीय यह रह जाता है कि इस मूर्खों के देश में बन्दा वैरागी का कैसे अन्त हुआ? इसमें दो मुख्य कारण बताए जाते हैं। प्रथम कारण यह था कि पंजाब में हिन्दुओं के वे तत्व, जिनका संगठन हुआ था, सिक्ख थे। आदि गुरु नानक से लेकर दशम गुरु गोविंद सिंह तक को वे अपना पथ-प्रदर्शक मानते थे। उन दिनों हिन्दुस्तान में गुरु की बहुत महिमा थी और जो एक बार किसी समुदाय का गुरु बन गया वह उस समुदाय में परमात्मा का रूप ही बन जाता था।

ऐसी स्थिति में यदि गुरु गोविन्द सिंह यह न कह जाते कि उनके पीछे कोई नया गुरु नहीं होगा तो बन्दा गुरु पद पर सुशोभित माना जाता। गुरु गोविंद सिंह बन्दे को अपना आशीर्वाद और तलवार दे गए थे। तब बन्दा वैरागी गुरु-पद पर होता हुआ सिक्खों को अपने व्यवहार के अनुकूल बना लेता।

हुआ यह कि युद्ध की स्थिति में और राज्य स्थापित होने के काल में वह त्याग और तपस्या रह नहीं सकती थी जो गुरुओं में केवल धर्म-प्रचार के समय थी। अतः सिक्खों की दृष्टि में बन्दा की वह मान-प्रतिष्ठा नहीं रही थी जो गुरुओं की थी। यदि वह गुरुगद्दी पर आसीन होता तो नई व्यवस्था देकर अपने साथियों में वह श्रद्धा, भक्ति उत्पन्न कर सकता, जो गुरुओं के लिए थी। बन्दा ने सिक्खों के अतिरिक्त भी हिन्दुओं की सेना बनाने का यत्न किया था, परन्तु उसमें वह सफल नहीं हो सका था।

दूसरा कारण था हिन्दुओं और सिक्खों का राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ होना। फरुखसीयर इसमें सिक्खों को चकमा दे गया। फरुखसीयर के गुप्तचरों ने सिक्खों में बन्दा के प्रति श्रद्धा देख सिक्खों को बन्दा के विरुद्ध करने का यत्न किया। गुरु गोविंद सिंह की पत्नियों को समझाया गया, भड़काया गया और सिक्खों के उस तत्व को, जो बन्दा के लिए अश्रद्धा रखते थे, एक पत्र लिखवा कर बन्दा और सिक्खों में फूट डलवा दी गई। वे सिक्ख तत्व खालसे कहलाते थे।

दिल्ली के शहंशाह ने उन सिक्खों को, जो बन्दा की सेना छोड़कर शाही सेना में आए, एक रुपया प्रति दिन के वेतन पर नौकर रख लिया। बहुत से सिक्ख शाही सेना में भरती हो गए। दिल्ली के शहंशाह ने पाँच हज़ार रुपये अमृतसर दरबार साहब को दिया और सिक्खों ने निम्न शर्तों पर सन्धि कर ली।

१. खालसा देश में लूट-मार नहीं करेंगे।
२. खालसा बन्दा की सहायता नहीं करेंगे।
३. विदेशी आक्रमण के समय खालसा शहंशाह दिल्ली के लिए लड़ेंगे।
४. खालसों की जागीरें छीनी नहीं जाएँगी।
५. हिन्दुओं को विवश कर इस्लाम स्वीकार नहीं कराया जाएगा।
६. हिन्दुओं के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जाएगा और उनकी मजहबी बातों में दखल नहीं दिया जाएगा।

यह सन्धि दरबार साहब के अधिकारियों और खालसा के साथ हुई और वे बन्दा के विरुद्ध प्रचार करने लगे। बन्दा पकड़ा गया और अपने सात सौ साथियों के साथ चाँदनी चौक दिल्ली में अनेक प्रकार के कष्ट देकर

मार डाला गया।

इसके कुछ ही पीछे सिक्खों के साथ हुई सन्धि भंग हो गई और दो-दो रुपये पर सिक्खों के सिर बिकने लगे।

अतः बात ठीक ही है 'हम हैं मूर्खों के देश'

बंदा वैरागी की जीवन मीमांसा
वैद्यश्री गुरुदत्त राष्ट्रीय इतिहासविद्

घटना भारत के स्वतन्त्र होने से पूर्व की है। पेशावर-आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव था। एक दिन रात्रि के अधिवेशन में पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार का 'ईश्वर' विषय पर व्याख्यान था। उस समय अध्यक्षता कर रहे थे वहाँ के डिप्टी कमिश्नर, जो थे तो मुसलमान पर सुपठित होने के कारण उदार विचारों के थे।

पण्डित जी ने व्याख्यान में ईश्वर के गुणों का वर्णन करते हुए 'सर्वशक्तिमान्' का अर्थ बताया-

"सर्वशक्तिमान् का यही अर्थ है कि ईश्वर अपने कर्म करने में पूर्ण रूप से समर्थ है। अपने कर्मों के करने में वह किसी अन्य की सहायता नहीं लेता है। सृष्टि की रचना करना, सृष्टि का पालन करना, उसका संहार (प्रलय) करना और जीवों के कर्मों का निरीक्षण तथा तदनुसार फलप्रदान करना- ये जो ईश्वर के कर्म हैं, उनके करने में वह सम्पूर्ण शक्ति से युक्त है- सर्वशक्तिमान् है। किन्तु 'सर्वशक्तिमान्' का यह अर्थ कदापि नहीं है, कि वह जो चाहे सो कर दे। बिना किसी सामग्री के कुछ बना दे। उसके भी कुछ नियम हैं। उनके अनुसार ही वह कार्य करता है, उनके विपरीत नहीं। कभी वह ऊटपटांग काम नहीं करता है।"

ध्यान से सुन रहे डिप्टी कमिश्नर ने अनुभव किया कि पण्डित जी के इस प्रवचन से तो कुरान के "सृष्टि से पहले खुदा के सिवाय कुछ नहीं था। खुदा ने 'कुन' (हो जा) कहा और नेश्त में से अश्त हो गया= नास्ति में से अस्तित्व हो गया= अभाव में से भाव हो गया"- इस सिद्धान्त का खण्डन हो रहा है। अतः बीच में ही बोले- "पण्डित साहब! खुदा तो वही हो सकता है, जो जैसा चाहे सो कर सके। खुदा पर भी कोई नियम लागू हो तो वह खुदा ही क्या?"

पण्डित जी ने समझाने का प्रयास करते हुए कहा- "ईश्वर भी नियमानुसार व्यवस्थानुसार कार्य करता है। वह असम्भव कार्य नहीं करता।"

डिप्टी कमिश्नर- 'हाँ, ईश्वर असम्भव को भी सम्भव कर सकता है, वह सब कुछ कर सकता है।'

पण्डित जी- "क्या खुदा अपने आप को मार सकता है? क्या वह अपने आपको दुराचारी, पापी, मलिन बना सकता है? या फिर क्या वह ऐसा कोई पत्थर बना सकता है, जिसे वह स्वयं न उठा सके"

डिप्टी कमिश्नर- "पण्डित जी, ये तो बेसिर पैर की बातें हैं। खुदा वास्तव में सब कुछ कर सकता है।"

तुरन्त पण्डित जी की ऊहा-प्रतिभा जागृत हुई। उन्होंने पूछा- "अच्छा, कमिश्नर साहब! खुदा का वजूद (अस्तित्व) कहाँ तक है?"

डिप्टी कमिश्नर- "उसका वजूद सब जगह है, वह हरजाँ मौजूद है, कोई जगह उसके बिना नहीं है।"

पण्डित जी- "क्या वह हिन्दुस्तान से या एशिया से बाहर भी है?"

डिप्टी कमिश्नर- "पण्डित साहब! आप कैसी मखौल की बात कर रहे हैं! आप भी तो ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं। वास्तव में खुदा संसार में सब जगह है। दूर से दूर तक है। He is omnipresent."

पण्डित जी- 'कहीं तो खुदा के वजूद की सीमा होगी?'

डिप्टी कमिश्नर- "नहीं, उसकी कोई हदो हदूद (सीमा) नहीं है। वह असीम है, अनन्त है- He is infinite."

इस प्रकार ईश्वर की अनन्तता-सर्वव्यापकता को स्वीकार करवा के पण्डित जी ने प्रसंग बदलते हुए पूछा- "कमिश्नर साहब! यदि मैं इस समय ऐसा व्याख्यान दे दूँ, जिससे साम्प्रदायिक दंगा भड़कने की आशंका हो जाय, तो आप क्या करेंगे?"

डिप्टी कमिश्नर (हँसते हुए)- "ऐसा करने पर मैं आपको तुरन्त पेशावर जिले की सीमा से बाहर निकलवा दूँगा।"

अब पण्डित जी की बारी थी- "कमिश्नर साहब! आप तो मुझे अपनी (अपने जिले की) सीमा से बाहर निकाल सकते हैं, पर क्या खुदा अपनी सीमा से मुझे बाहर निकाल सकता है, चाहे मैं कितना ही पाप करूँ? और यदि नहीं, तो यह कैसे कि वह सब कुछ कर सकता है?"

डिप्टी कमिश्नर विचारवान व्यक्ति थे। तुरन्त समझ गये कि जब खुदा की कोई सीमा ही नहीं है, तो वह किसी को अपनी सीमा से बाहर कैसे निकाल सकता है? अतः प्रसन्न होकर पण्डित जी को उत्तम तर्क द्वारा ईश्वर की अनन्तता और सर्वशक्तिमत्ता समझाने का धन्यवाद दिया।

यह है ऊहा द्वारा सिद्धान्त को समझाने और उसकी रक्षा करने का चमत्कार!

- पंडित बुद्धदेव विद्यालंकार

सुखी कैसे रहें?

गतांक से आगे .....

आत्मिक आहार

जैसे शरीर के विकास के लिए उचित आहार की अपेक्षा होती है, वैसे ही आत्मविश्वास के लिए आत्मिक आहार की भी आवश्यकता होती है। जैसे कि सारी सुविधाओं से सम्पन्न भवन में यदि किसी को बंद कर दिया जाए वहाँ और तो सारी सुविधायें हों, केवल खाने के लिए कुछ भी न हो, तो दो-चार-दिन के बाद उस मकान में बंद व्यक्ति विवश होकर कह उठता है, कि भोजन के बिना ये सुविधायें मेरे किस काम की? यहाँ तक कि मुट्ठी भर दानों के लिए बहुत कुछ या सब कुछ देने के लिए भी तैयार हो जाता है। जैसे भोजन के बिना शरीर कलप उठता है, ठीक इसी प्रकार आत्मा भी अपने आत्मिक आहार के बिना बैचेन हो उठता है।

आज धन, सम्पत्ति, स्वस्थ शरीर और परिवार के होने पर भी किसी की अशान्ति का सबसे बड़ा एक कारण यह भी होता है, कि वह अपने आप को शरीर समझकर उसी में सीमित हो जाता है और तब आत्मा अपने आहार के बिना अशान्त हो जाता है।

हम संसार में सर्दी-गर्मी, वर्षा-दोपहरी आदि की चिन्ता किए बिना ही हर कष्ट उठाकर धन कमाते हैं अर्थात् धन कमाने के लिए हर तरह का कष्ट उठाते हैं। अब प्रश्न उठता है, कि हम धन किसलिए कमाते हैं? जिसका सीधा सा उत्तर यह है कि जिससे हम अपने और परिवार का गुजारा अर्थात् सब के शरीर की रक्षा तथा विकास कर सकें। ऐसी स्थिति में पुनः प्रश्न उभरता है कि प्रातः से सायं तक हर कार्य करके और सोकर शरीर को किसलिए पालते हैं? अर्थात् हम दुनियाँ की हर तकलीफ उठाकर धन कमाते हैं और धनार्जन शरीर को पालने के लिए करते हैं, परन्तु क्या कभी हमने यह भी सोचा है कि हम शरीर को किसलिए पालते हैं? यदि यह नहीं सोचा, तो फिर हमारा शरीर का पालन अधूरा ही है। तब हमारी स्थिति उस व्यक्ति जैसी ही होगी, जिसने अपनी लाखों की कार को तैयार नहीं किया। इसी प्रकार यदि हम प्रतिदिन शरीर को तो तैयार करते हैं, परन्तु शरीर के स्वामी की कोई तैयारी नहीं करते? तब आत्मा के निखार के बिना यह सारी सज्जा अधूरी ही हो जाती है।

यही तो सबसे विशेष सोचने वाली बात है कि हम जो दिनों पर दिन, मासों पर मास और वर्षों पर वर्ष बिताए चले जा रहे हैं, वह किसलिए? क्यों इस

दुनियाँ में आयें हैं? और हमें किसने, किसलिए यहाँ भेजा है? वस्तुतः हमारे जीवन और इस दुनियाँ में आने का एकमात्र प्रयोजन है- 'आत्मा की उन्नति' अर्थात् अपने आप का विकास।

सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय और योग-अभ्यास ही आत्मा का सबसे उत्तम आहार है। तभी तो मनुस्मृतिकार ने कहा है- प्राणियों की आत्मा आत्मज्ञान और योगाभ्यास से संस्कृत, प्रगतिशील, विकसित होती है। यहाँ विद्या शब्द आत्मज्ञान-आत्मा सम्बन्धी ज्ञान, उससे सम्बन्ध रखने वाले (थ्योरी) सैद्धान्तिक, वैचारिक ज्ञान का वाचक है और तप शब्द प्रकरण के अनुरूप क्रियात्मक प्रैक्टीकल रूप का वाचक है। तप का अधिकतर अर्थ यश-अपयश, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों (जोड़ों) का सहन माना जाता है। परन्तु इन सब का सम्बन्ध शरीर से है और यश-अपयश का मन से है। मूलतः यहाँ आत्मा के निखार का प्रकरण है। अतः प्रकरण के अनुरूप तप का अर्थ योगाभ्यास ही है। क्योंकि योग, समाधि, एकाग्रता का आत्मनिखार से सीधा सम्बन्ध है। कुछ स्थलों पर इसके लिए स्वाध्याय= अपने आप को समझने और योग शब्दों का प्रयोग किया है।

योगाभ्यास साधना का विषय है। योग, समाधि, एकाग्रता ये तीनों ही पर्यायवाची शब्द हैं। एकाग्रता के लिए जरूरी है कि व्यक्ति अपना ध्यान अन्य सब ओर से हटा कर एक ओर ही लगाए। जैसे वाहन चालक अपना ध्यान अन्य तरफ से हटाकर अपने लक्ष्य पर लगाता है। तो सभी की यात्रा सुखप्रद हो जाती है। जैसे जब कोई अपना ध्यान एकाग्र करके रुपये गिनता है, तो उस का कार्य विश्वास पूर्वक निश्चिन्त होता है। ऐसे ही योग के अभ्यास से व्यक्ति का मन स्वच्छ, पवित्र, शान्त, सन्तुष्ट, सुखप्रद होता है।

जैसे ही गहरी नींद में व्यक्ति दुःख, क्लेश, रोग, शोक, चिन्ता, तनाव से दूर रहता है और उठने पर अपने आप को तरोताजा अनुभव करता है। ऐसे ही योग से एकाग्रता साधकर व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, अस्त-व्यस्त, डांवाडोल स्थिति को सुधार लेने पर अशान्त, दुःखी, रोगी, चिन्ताग्रस्त, तनावयुक्त नहीं रहता। कोई पदार्थ, व्यवहार, भाव, स्थिति व्यक्ति के चित्त आदि को अस्त-व्यस्त कर देती है। ऐसे ही करके ही उसको अस्त-व्यस्त स्थिति के निवारण, व्यवस्थीकरण को ही योग कहते है। निद्रा जैसी एकाग्रता के कारण ही योग को निद्रा से समझाया गया है।

सामाजिक कर्त्तव्य

सामाजिक जीवन- प्रत्येक मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, क्योंकि समाज में ही उसका जन्म और पालन होता है। विश्वस्तर पर देखा जाय, तो हजारों लाखों ही नहीं, अपितु करोड़ों-अरबों लोग मानव समाज की अन्न, वस्त्र, भवन, चिकित्सा, सुरक्षा, शिक्षा, आवागमन आदि मौलिक एवं दूर-सन्देश, दूरभाष, आकाशवाणी, दूर-दर्शन, पत्र-व्यवस्था (डाक) सदृश सहायक तथा सुविधा-वर्धक आवश्यकताओं की पूर्ति लगे हुए हैं। अतः समाज के बिना व्यक्ति न तो जीवित रह सकता है और न ही प्रगति कर सकता है। इसीलिए मनुष्य को परस्पर अपेक्षी सामाजिक प्राणी कहते हैं और सामाजिकता मनुष्य का एक स्वाभाविक गुण है। तभी तो वह अकेले में निराश, हताश, उदास और दुःखी हो जाता है। अकेलेपन में वह भय अनुभव करता है और सामाजिकता में हर एक आशा, उत्साह एवं सुख अनुभव करता है।

सामाजिक और वैयक्तिक जीवन को सुखी बनाने के लिए परस्पर सहयोग एवं सद्भाव की अत्यन्त आवश्यकता होती है तथा यह सब सामाजिक सम्बन्धों की घनिष्ठता पर ही निर्भर है। ये सामाजिक सम्बन्ध तीन प्रकार के होते हैं- पारिवारिक, मित्रवर्गीय तथा कारोबारी। जिसके साथ जिस प्रकार का सामाजिक सम्बन्ध है। वह सम्बन्ध परस्पर जितनी सच्चाई के साथ होगा, तब दोनों को तथा उनके साथ ही समाज को उतना ही अधिक सुख,

शान्ति का अनुभव प्राप्त करने का अवसर और सहयोग प्राप्त होगा।

जैसे कि पति-पत्नी के रूप में धार्मिक-सामाजिक मर्यादा पूर्वक साथ रहने की घोषणा से परिवार का शुभारम्भ होता है। परिवार में माता-पिता, सन्तान, भाई-बहन आदि पारिवारिक जन आते हैं। परिवार

में जिसका जिसके साथ जैसा सम्बन्ध है, उस सम्बन्ध को परस्पर ईमानदारी से निभाने पर ही परिवार का सुख-आनन्द प्रकट होता है।

अतः सामाजिक जीवन को सुदृढ़ बनाने के लिए किसी के काम आना, दूसरों की सहायता करना बहुत आवश्यक है। तभी तो कहा है-

यही है इबादत, यही है दीनों ईमां।
इन्सान के काम आए इन्सां।।
जिसने की इन्सान की खिदमत,
दुनिया में है इन्सान वही।
जो अपना मतलब देखे,
हैवान है वह इन्सान नहीं।
किसी के काम आए, उसे इन्सान कहते हैं।
पराया दर्द अपनाए, उसे इन्सान कहते हैं।।

परिवार की तरह जब किसी को समाज में सहयोग, सद्भाव प्राप्त होता है। तभी उसका जीवन सुखी होता है। प्रत्येक व्यक्ति जहाँ, परस्पर सद्भाव सहयोग चाहता है, वहाँ वह स्वाभाविक रूप से सम्मान की भी इच्छा रखता है। यह सामाजिक जीने का समान अवसर और सम्मान जब व्यक्ति को पारस्परिक व्यवहार, योगदान, योग्यता के अनुरूप प्राप्त होता है तो वह अपने आप को सुखी मानता है। पर जब किसी के साथ केवल जाति, धर्म, धन के आधार पर सामाजिक जीने के अवसर और सम्मान में भेदभाव किया जाता है तो सामाजिक संगठन ढीला हो जाता है। तब परस्पर उपजी भिन्नता की भावना घृणा, ईर्ष्या, द्वेष की ओर बढ़ती है। अतः बिना किसी कारण के परस्पर भेदभाव एक अन्याय है और इस को मानना, वर्तना अन्याय का ही समर्थन है। प्रत्येक शिक्षा, संस्कार और अवसर मिलने पर प्रगति कर सकता है। जैसे कि भारतीय नागरिक होने से हम भारतीय समाज के समान सदस्य हैं।

सामाजिक सम्बन्ध जहाँ कुछ के साथ पारिवारिक रूप में होते हैं, तो कुछ के साथ मित्रता के रूप में होते हैं और कुछ के साथ शैक्षणिक, राजनीति, आर्थिक सहयोगी के रूप में होते हैं। जिससे व्यक्ति का सम्बन्ध जितने अंश में सुन्दर, सद्भाव पूर्ण होता है, उतने अंश में उस दृष्टि से व्यक्ति अपने आप को सन्तुष्ट अनुभव करता है। इन्हीं सम्बन्धों की घनिष्ठता और शुचिता पर ही हमारा सामाजिक जीवन टिका हुआ है। समाज की व्यवस्था हाथ की अंगुलियों की तरह है। जो कि एक सी नहीं हैं, उनका हाथ में स्थान, क्रम, आकृति, शक्ति भिन्न-भिन्न है। पुनरपि वे हर कार्य के समय समस्थिति में आ जाती हैं। ऐसे ही सामाजिक कार्यों और संगठन में सभी को समान अवसर और सम्मान अर्थात् जीवन का अधिकार दिया जाए।

परिवार

सामाजिक सम्बन्धों की प्रथम इकाई परिवार है। जिसका शुभारम्भ एक युवक और युवती द्वारा धार्मिक-सामाजिक मर्यादा के साथ एक-दूसरे को पूरी तरह से अपनाने से होता है। इसी उद्यान की सन्तानें पुष्प हैं और संयुक्त परिवार में माता-पिता, भाई-बहन आदि भी आते हैं। ये रिश्तेदारियाँ आगे से आगे जंजीर की कड़ियों की तरह जुड़ी होती हैं।

अन्य साझेदारियों की तरह विवाह की भी कुछ शर्तें, व्यवस्थायें होती हैं। सांझे जीवन में पारस्परिक सहयोग, सद्भाव का आधार स्नेह है। इसका मूल एक-दूसरे पर विश्वास है और विश्वास का आधार है- सच्चाई, निच्छलता। इसीलिए इनको जीवनसाथी, अर्द्धांग-अर्द्धांगिनी कहते हैं। दोनों में जितना अधिक विचार साम्य और परस्पर समझने की भावना होती है, उनका विवाहित जीवन उतना ही सफल होता है। यही बात बहुत कुछ मित्रों पर भी लागू होती है। हाँ, विश्वास के अभाव में सब कुछ बिखरने लगता।

ईश्वर सत्ता

यह तो निश्चित बात है कि यह संसार न तो आप ने बनाया है और न ही मैंने बनाया है या हमारे पूर्वजों ने। हम सब से ऊपर एक ऐसी शक्ति, सत्ता है, जो इस अपार संसार को बनाती और चलाती है। ये सूर्य-चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र, जल-वायु-धरती आदि सहस्रशः प्राकृतिक, भौतिक पदार्थ हैं। जो एक व्यवस्थित व्यवस्था में अपना-अपना कार्य कर रहे हैं। यह व्यवस्था सभी के लिए समान रूप से सर्वत्र चल रही है। कोई भी इस व्यवस्था से इधर-उधर नहीं जा सकता। सभी उस महान् सत्ता के नियमों में बन्धे हुए हैं। तभी तो मेरे आपके न चाहते हुए भी डाक्टरों के देखते-देखते अर्थात् सारा प्रयत्न करने पर भी मौत का चक्र चलता है। जो इस दृश्य-अदृश्य रूपी सारे जग का निर्माता है और व्यवस्थापक है- वही ईश्वर है।

उस महान् शक्ति के प्रति स्वीकृति, उस के नियमों को मानने, समझने की भावना रखना, उस के प्रति कृतज्ञ रहना अर्थात् उसके द्वारा होने वाले कार्यों को स्वीकारना, आदर भावना देना ही आस्तिक भावना है। यही उसकी उपासना, पूजा, भक्ति है कि व्यक्ति सदा कृतज्ञ होकर उसके नियमों को मानने का, उस से जुड़ने का प्रयास करे। उस अपार, अमर शक्ति के प्रति समर्पण बुद्धि रखने से मनुष्य में अंहकार की भावना नहीं आती और तब व्यक्ति बे सिर-पैर के कार्य जैसी बातें नहीं करता। अर्थात् दूसरों से अन्याय, धक्केशाही और उन पर किसी प्रकार का अत्याचार या उनका शोषण नहीं करता।

भक्ति, उपासना द्वारा उस महान् सत्ता से अपना सम्बन्ध जोड़ने पर व्यक्ति में आत्मिक बल आता है। जिससे तब वह संकटों, विपरीत परिस्थितियों में घबराता नहीं है। इससे आस्तिक के हृदय में श्रद्धा, पवित्रता, प्रसन्नता, उदारता, नम्रता, शीतलता, सन्तुष्टि की भावनायें उभरती हैं, जड़ जमाती हैं।

आस्तिक भावना जीवन के लिए बहुत ही कल्याणकारी है। ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने से व्यक्ति में धर्म के प्रति श्रद्धा, विश्वास बना रहता है। सबसे बड़ा लाभ यह है कि जब ईश्वर भक्त ईश्वर को कर्मफल-दाता मानता है, तो उसकी कर्मफल व्यवस्था पर उस का विश्वास बना रहता है। इससे पुण्य कर्मों का फल एकदम मिलता हुआ दिखाई न देने पर भी भक्त ईश्वर के विश्वास पर पुण्य (अच्छाई) करता रहता है। दूसरी ओर पापों (बुराईयों) का फल एकदम मिलता हुआ न दिखाई देने पर भी एक आस्तिक ईश्वर की व्यवस्था के भय से पाप कर्मों से दूर रहता है।

ईश्वर पर विश्वास अर्थात् ईश्वर को स्वीकार करने से मनुष्य की अनाथता कम होती है। तब वह अपने आपको अकेला, असुरक्षित नहीं मानता। ऐसी स्थिति में व्यक्ति उस महान् शक्ति को अपना मित्र, रक्षक, सहायक अनुभव करता है। इससे आस्तिक में उत्साह, धैर्य और आत्मबल आता है। अनेक महापुरुषों, सन्तों, भक्तों का जीवन इस बात का साक्षी है कि वे विपरीत परिस्थितियों में भी अडोल रहे।

अतः ईश्वर-उपासना, प्रभु-भक्ति का भाव है कि अपने आपको महान् शक्ति के साथ जोड़ना। उससे अपना निकट से निकट सम्बन्ध अनुभव करना। शिशु जैसे निश्छल होकर पूर्णतः अपने आपको समर्पित करना।

ईश्वर-अनुभूति वह कण-कण में समाया हुआ ईश्वर सब जगह सदा रहता है। उस जगत्कर्त्ता, संसार संचालक परमात्मा की अनुभूति ईश्वर को

मानने वाले सारे भक्त, सन्त, शास्त्रविद् अपने हृदय में ही सर्वव्यापक, नित्य रूप में करते हैं। ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करने वालों की यह पक्की धारणा है कि निर्विकार, न्यायकारी, परमात्मा जीवों को अपने-अपने कर्मों के अनुरूप ही अनेक तरह के चोलों से जोड़ता है। इन अनन्त चोलों (शरीरों) के रूप में ही संसार है। इस सब का स्रष्टा, संचालक, व्यवस्थापक ईश्वर ही है।

ईश्वर की अनुभूति को कराते हुए ही कहा जाता है-

हर जगह मौजूद है, पर नजर आता नहीं।
योग साधन के बिना, उसको कोई पाता नहीं।।

योग की साधना को स्पष्ट करते हुए ही समझाया है-

आँख-कान-मुख मूंद कर नाम निरंजन लेय।
अन्दर के पट खुलें, बाहर के पट देय।।

जब कोई किसी गम्भीर, अभौतिक चीज के सम्बन्ध में सोचता है, ध्यान लगाता है, तब स्वाभाविक रूप से दूसरी ओर (भौतिक) से नाता टूट जाता है। निरंजन, अभौतिक रूप से जुड़ने के लिए पहले स्थूल, भौतिक से अपने ध्यान को हटाना ही होगा। तभी अभौतिक का चिन्तन, मनन हो सकता है। जैसे गहरी नींद में जाते ही अन्य सब से नाता स्वतः टूट जाता है।

इसका एक सरल रूप यह हो सकता है कि पूर्व चर्चित ईश्वर के स्वरूप के बोधक-ओ३म् नाम को लम्बी सांस के साथ ओ....म् की गुंजार करें और मन में ओ३म् वाच्य ईश्वर का चिन्तन हो। इस प्रकार बीच में थोड़ा थोड़ा रुक कर पुनः ओ३म् की गुंजार करें।

उपसंहार

हमारे दुःखी जीवन का सबसे बड़ा कारण है- दिनचर्या और जीवनचर्या की अव्यवस्था। जिससे हमारी भौतिक इच्छायें पूर्ण नहीं होतीं या बहुत बढ़ जाती हैं। इसीलिए गीताकार ने कहा है- जिसका खान-पान, रहन-सहन (भोग) रोजमर्रा के कार्य सोना-जागना उपयुक्त, मर्यादित हैं, उसी का ही (जीवन) योग दुःख रहित, सफल होता है।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। (६, १७)

स्कन्द पुराण पू. ४१, १३० का भी यही भाव है।

इसीलिए ही चरककार ने कहा है- **'समयोगः सुखकारकः।** इनकी अव्यवस्था ही सबसे बड़ दुःख का कारण है। हमारे दुःख-रोग के कारण होते हैं और रोग प्रायः आहार-विहार की अमर्यादा से होते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में भी जीवन को मर्यादित

बनाने का ही प्रयास किया जाता है। आयुर्वेद में भी इसीलिए ही पथ्य-अपथ्य पर विशेष बल दिया जाता है।

जीवन को सुखी बनाने के लिए व्यक्ति को उन स्थितियों पर ध्यान देना चाहिए, जिनमें वह रहता है। जैसे कि ऋतुओं को समझने और उनके अनुकूल चलने से ही व्यक्ति सुखी होता है। ऐसे ही आज के युग में वैज्ञानिक भावना को अपनाने से ही व्यक्ति सुखी हो सकता है। जैसे कि जो नदी, पर्वत आदि पदार्थ जैसा है, उनको उसी-उसी रूप में स्वीकार करने से व्यक्ति धोखा नहीं खाता और तब उनका सही उपयोग करके उन से लाभ, सुख प्राप्त किया जा सकता है जैसे कि भूमि की गोलाई को समझने, मानने से भूगोल सम्बद्ध उपयोगिताओं से लाभान्वित हो सकते हैं।

ऐसे ही परस्पर शिष्ट ढंग से बोलने पर दोनों सुखी होते हैं। तभी तो कहा है-

ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोए।
औरन को शीतल करे आपहू शीतल होए।।

अन्यथा कड़वे बोलों से जो महाभारत मचता है उसके उदाहरण पग-पग पर सामने आते रहते हैं और इसके परिणाम को दर्शाने के लिए ही कहा है-

खीरा मुख से काटिए, मलिए नमक लगाए।
रहिमन कड़वे मुखन को चाहिए यही सजाए।।

लेखक- आचार्य भद्रसेन
दर्शनाचार्य, होशियारपुर

इस अवसर पर सर्वप्रथम लेखक के कुछ स्वरचित श्लोक महर्षि की स्तुति में समर्पित हैं-

(शिखरिणी छन्दः)

जनिः टंकाराभूः करसनसुतो भारतजयः,
स्वराष्ट्रस्य त्राता दुरिततमसः वेदनिधिपः।
प्रजायै वात्सल्यं वसति हृदये नित्यविमलम्,
दयानन्द स्वामी निवसति सदा शिष्यजगति॥१॥

अर्थ- जिनका जन्मस्थान टंकारा की पवित्र भूमि है, जो करसन जी के सुपुत्र हैं, जिन्होंने अपनी विद्वत्ता और वक्तृत्व से सम्पूर्ण भारत के मतों को जीत लिया। जिन्होंने अपने राष्ट्र की अज्ञानान्धकार और दुर्गुण तथा दुर्व्यसनों से रक्षा की और सभी सत्यज्ञान की महान् राशि वेद की रक्षा की। भारत की प्रजा और अपने भक्तों के प्रति जिनके हृदय में सदा निश्छल प्रेम वसता है, ऐसे स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने शिष्य मण्डल में सदा ही प्रेरणा प्रतीक के रूप में निवास करते हैं।

(मन्दाक्रान्ता छन्दः)

नद्यां वेदे विलसति सदा यस्य माता विधाता,
लोके वक्ता जगति गुरुता शास्त्रसंग्रामयोद्धा।
जीवन्मुक्तो विमलपुरुषों नित्यमग्नः समाधौ,
मोक्षानन्दे निवसति दया-नन्द दण्डी महर्षिः॥२॥

अर्थ- जो सदा वेदरूपी नदी के निर्मल ज्ञान रूपी पवित्र जल में प्रसन्नता पूर्वक रमण करते हैं, जो सब जगत् के धारण करने वाले परमपिता परमात्मा को ही अपनी माता मानते हैं, जो लोक (समाज) में बहुत श्रेष्ठ वक्ता तथा संसार में अपने ज्ञान से गुरुत्व को प्राप्त हुए और जो शास्त्रार्थ रूपी संग्राम के महान् तथा अजेय योद्धा थे।

जो योगी जीवन्मुक्त हो चुके थे ऐसे सब दोषों से पृथक् निर्मलपुरुष सदा समाधि के आनन्द में मग्न रहते थे, ऐसे दण्डी महर्षि दयानन्द सरस्वती अब परमात्मा के नित्यानन्द मोक्ष में निवास करते हैं।

महर्षि की २००वीं जयन्ती के अवसर पर पूरे भारत और विश्व में अनेक छोटे-बड़े कार्यक्रमों का आयोजन हो रहा है। जिनमें राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, अनेक मुख्यमन्त्री, राज्यपाल और अनेक बड़े-बड़े नेता एवं विद्वान् व उद्योगपति मुख्य अतिथियों के रूप में सम्मिलित हो रहे हैं, निःसन्देह इन सब कार्यक्रमों का आर्यसमाज पर तथा पूरे भारत की जनता में भी कुछ सार्थक प्रभाव अवश्य पड़ेगा जिसका लाभ भविष्य में आर्यसमाज को मिलेगा। परन्तु जरा हम विचार कर देखें कि इनका प्रभाव क्या चिरकालिक और स्थायी हो सकता है? उत्तर है नहीं, क्योंकि इन कार्यक्रमों में कोई योजना बद्ध शैली नहीं है और इन सब बातों को लोग समय के साथ धीरे-धीरे भूल जाते हैं क्योंकि ये किसी परम्परागत व्यवस्था का भाग नहीं है। जो ज्ञान परम्परागत व्यवस्था से जुड़ जाता है वह चिरकालिक और स्थायी होता है अतः वैदिक धर्म के प्रचार के लिए हमें दीर्घकालिक स्थायी उपायों को अपनाना चाहिए। तो वे क्या हो सकते हैं? आइए विचार करते हैं। महर्षि ने हमें बताया कि हमारी वैदिक संस्कृति का पतन वास्तव में महाभारत से भी लगभग १००० वर्ष

पूर्व प्रारम्भ हो चुका था जो कि ऐश्वर्य के अत्यधिक बढ़ जाने पर आने वाले प्रमाद तथा स्वाध्याय की कमी से स्वाभाविक था परन्तु महाभारत के बाद यह पतन और तीव्र हो गया। उसके बाद लगभग १५०० से २००० वर्ष पूर्व जैन, बौद्ध तथा ईसाइयत और इस्लाम मत भारत में फैलने लगे तो यह पतन और भी तीव्र हुआ। जिसमें इस्लाम ने हमारी संस्कृति को बहुत ही तीव्रता और क्रूरता से हानि पहुँचायी। अंग्रेजों ने हमारी शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह नष्ट कर हमारी संस्कृति को मृतप्राय बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। फिर देश में जब क्रान्ति हुयी, स्वतन्त्रता सेनानियों और बलिदानियों ने स्वराज्य के लिए स्वयं को सर्वात्मना समर्पित कर दिया, यह सोचकर कि जब हमारा भारत राष्ट्र स्वतन्त्र हो जायेगा तो अपना राज्य होगा, अपनी शिक्षा होगी तथा अपना वैदिक धर्म पुनः संरक्षित होकर स्थापित होगा। परन्तु हमारे देश का परमदुर्भाग्य यह रहा कि जिन हाथों में सर्वप्रथम देश का शासन आया उन्होंने भारत और भारतीयता रूपी भयभीत गाय की रक्षा करने के बजाय उसे अपनी तुष्टिकरण वाली गन्दी राजनीति के लिए कसाई को ही सौंप दिया तथा स्वतन्त्रता तक हुए हमारे सांस्कृतिक पतन की गति सर्वाधिक हो गयी और ये ही भारत विरोधी लगातार लगभग ६०-६५ वर्षों तक सत्ता में बने रहे और हमारी संस्कृति तिल-तिल करके मरती रही। परन्तु वर्तमान में भी हम संवर्धन तो दूर अच्छी तरह सुरक्षा की अवस्था में भी नहीं हैं।

ये तो था सरकार और प्रशासन का दोष जिसके लिए ईश्वर उन्हें दण्ड देगा। परन्तु थोड़ा विचार करें जो हम स्वयं को सनातनी-वैदिक धर्मी मानते हैं विशेषकर हम आर्यसमाजी जिनका उत्तरदायित्व ज्ञानवान् होने से सबसे अधिक है, क्या हमने अपना कर्तव्य निभाया है? उत्तर है- नहीं। विचार करके देखिये विधर्मी इस्लामिक लोग अपने बच्चों को मदरसों में या किसी मौलवी के पास भेजकर अपनी मजहबी शिक्षा अवश्य दिलवाते हैं, बिना किसी रोजगार या नौकरी की चिन्ता किये। यदि हमने भी

अपने बच्चों को गुरुकुलों में पढ़ाया होता तो आज स्थिति कुछ सुखद हो सकती थी और बिना किसी सरकारी और प्रशासनिक सहायता के भी हम और हमारा धर्म सुदृढ़ और सशक्त होता। परन्तु हमने ऐसा नहीं किया क्योंकि हमें अपने बच्चों का भविष्य गुरुकुल में संकटमय दिखायी देता है। उसे नौकरी नहीं मिलेगी आदि। और उस संकट के कारण भी हम ही हैं। जब हम किसी चिकित्सक (डॉक्टर), अभियन्ता (इन्जीनियर), अधिवक्ता (वकील), आदि से कोई काम लेते हैं तो हम उसे एक-एक बार में ५०००-१०,००० या २०,००० रुपये का शुल्क देते हैं परन्तु जब अपने घर में कोई पुरोहित या वैदिक विद्वान् आता है तो उसे ५००-१००० या १५००-२००० रुपये देकर ही काम चलाना चाहते हैं अब यह देखकर कौन अपने बेटे-बेटियों को गुरुकुल में पढ़ाना चाहेगा। जिस दिन लोग गुरुकुल के स्नातकों को एक चिकित्सक, अधिवक्ता, अभियन्ता के समान दक्षिणा देने लगेंगे उसी दिन से गुरुकुलों में विद्यार्थियों की संख्या स्वयं बढ़ जायेगी जो आगे चलकर समाज के काम आयेंगे और गुरुकुल में पढ़ने वालों के भविष्य का संकट अपने आप दूर हो जायेगा। हमें यह निश्चित जानना चाहिए कि बिना गुरुकुलीय व्यवस्था की पुनः स्थापना के और वैदिक विद्वानों की अधिकता के वैदिक धर्म का समग्र प्रचार कभी नहीं हो सकता और वैदिक धर्म के बिना मानव समाज सुखी कभी नहीं रह सकता

क्योंकि शास्त्रों में ऋषियों ने मुक्त कण्ठ से यह उद्घोष किया है कि-

'धर्मात् सुखम् अधर्माद् दुःखम्।'

और रोजगार और आजीविका व्यक्ति की स्वयं की योग्यता पर निर्भर करती है न कि गुरुकुल या आधुनिक शिक्षा पर जो स्वयं प्रतिभावन और योग्य है। वह चाहे गुरुकुल में पढ़े या आधुनिक विद्यालय में वह सम्पन्न और सफल हो ही जाता है परन्तु जिसमें ये गुण नहीं हैं ऐसे आधुनिक शिक्षा प्राप्त भी खूब बेरोजगार देखे जाते हैं और गुरुकुलों के स्नातकों के लिए कार्य क्षेत्र भी बहुत हैं। आज विद्वान् कम हैं और कार्य बहुत अधिक। इसीलिए कई बार, एक-एक योग्य विद्वान् को कई-कई उत्तरदायित्व उठाने पड़ते है जिससे कि कार्य भी उतना अच्छी प्रकार से नहीं हो पाता है कुछ न कुछ छूट ही जाता है। ऐसी स्थिति में समान योग्यता वाले अनेक विद्वान् व विदुषियाँ हों तो कार्य बहुत अच्छा हो सकता है।

महर्षि दयानन्द जी भी वैदिक धर्म की रक्षा के लिए गुरुकुलों की पुनः स्थापना करना चाहते थे और उन्होंने कुछ गुरुकुल खुलवाए भी थे तथा यह उद्घोष भी किया कि संस्कृत सीखो, वेद पढ़ो और वेदों की ओर लौटो। अतः महर्षि की २००वीं जयन्ती पर महर्षि के लिए सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि सभी पाठकगण कम से कम अपने परिवार या परिचितों में से दो-दो कन्याओं और दो-दो विद्यार्थियों को गुरुकुलों में प्रवेश दिलाएँ और गुरुकुल में पढ़ने वालों का यथासम्भव सहयोग करें। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो निश्चित ही वेद और ऋषि के प्रति हमारी श्रद्धा में कमी है, ऐसा मानना चाहिए। इस २००वीं जयन्ती में महर्षि के लिए हमारे द्वारा एक और अच्छी श्रद्धांजलि होनी चाहिए कि हम सब आर्यसमाजी २०२५ में २०० वर्ष पूरे होने तक एक-एक व्यक्ति २००-२०० सत्यार्थ प्रकाश पुस्तकों का वितरण आर्यसमाज से अपरिचित घरों में करें तथा एक वर्ष पूरा हो तो भारत में एक भी घर ऐसा न हो कि जिसमें सत्यार्थ प्रकाश न हो। इस कार्य को एक आन्दोलन मान कर करना चाहिए। इस कार्य को मैंने भी अपने पिता द्वारा अपने खर्च के लिए दिये गये धन से प्रारम्भ किया है, जिन पुस्तकों का वितरण वानप्रस्थ साधक आश्रम के माध्यम से मेरे द्वारा किया जा रहा है। आप सब भी इस योजना में सहभागी बनें। धन्यवाद।

लेखक- ब्रह्मचारी शिवनार्थ आर्य 'वैदिक'
व्याकरण और निरुक्ताचार्य
आर्ष गुरुकुल, वानप्रस्थ साधक आश्रम, रोजड़, गुजरात (३८३३०७)

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि इस न्यास के अत्यन्त सहयोगी कांकरोली (राजसमन्द) निवासी श्री सुशील वशिष्ट के सुपुत्र चिरंजीव अंकुर का विवाह सौ. कां. मनीषा के साथ दिनांक १२ नवम्बर २०२४ को वैदिक रीति-रिवाज के साथ सम्पन्न हुआ। इस विवाह में विशेष बात यह रही कि श्री सुशील वशिष्ट जी ने अपनी ओर से सभी आगंतुक अतिथियों को 'सत्यार्थप्रकाश, मनचाही संतान, सात कदम मेरे संग एवं विवाह और विवाहित जीवन' जैसा पारिवारिक एवं ज्ञानवर्धक साहित्य भेंट किया। हम न्यास एवं सत्यार्थ सौरभ परिवार की ओर से नवयुगल को उनके वैवाहिक जीवन में पदार्पण हेतु हार्दिक बधाई एवं शुभकामना प्रेषित करते हैं एवं परिवारी जनों को भी इस मंगल कार्यक्रम के लिए ढ़ेरों बधाईयाँ देते हैं।

दान की अपील

सत्यार्थ प्रकाश रचना स्थली नवलखा महल से NMCC के रूप में सत्यार्थ शिक्षाओं को जिस अद्भुत प्रकार से प्रसारित किया जा रहा है और सहस्रों लोग आकर्षित हो इसका लाभ ले रहे हैं जिस कारण से यह स्थल अब विख्यात होता जा रहा है। आपसे प्रार्थना है कि इस यज्ञ में अपनी छोटी–बड़ी आहुति अवश्य देने की कृपा करें। इस हेतु साथ में दिए यूपीआई कोड का भी आप इस्तेमाल कर सकते हैं। बस एक अनुरोध है कि अगर आप अर्थ सहयोग प्रदान करें तो चलभाष 9314235101, 7976271159 अथवा 9314535379 पर सूचित अवश्य करें।

G Pay

श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास

BHIM UPI

भोजन कैसे करें

(प्रस्तुत आलेख में कैसा भोजन करें जो स्वास्थ्यवर्धक हो की बात न करके भोजन कैसे करें इस पर प्रकाश डाला है जो उतना ही महत्वपूर्ण है।)

क्या खाना चाहिए, इसकी अपेक्षा कैसे खाना चाहिए, यह जानना अधिक आवश्यक है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए-

1. स्वाद के साथ भोजन ग्रहण करना चाहिए।

स्वाद के साथ साधारण आहार लेने पर भी शरीर के लिए रसायन बन जाता है। उसके साथ शरीर के पाचन-रस स्वाभाविक रीति से मिलकर उसको पचाते हैं। बिना स्वाद का खाया हुआ उत्तम भोजन भी ठीक से नहीं पचता और शरीर के लिए भारस्वरूप बन जाता है, जिससे व्याधियों के कीड़े या अंकुर ही उत्पन्न होते हैं। औदरिक या घस्मर (जिसके मन में खाने के अतिरिक्त कोई अन्य विषय न हो) व्यक्ति के मन में भोजन के प्रति जो अनुराग उत्पन्न होता है वह स्वाद नहीं, लोभ का परिचायक होता है। राजा धृतराष्ट्र को दिया हुआ विदुर का यह उपदेश इस प्रसंग में उल्लेखनीय है-

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुंजते सदा।
क्षुत्स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा।।

(महाभारत)

अर्थात् दरिद्र व्यक्ति जो भी खाए, सदा अच्छा ही भोजन करता है क्योंकि वह भूख से खाता है। स्वाद को उत्पन्न करनेवाली वह भूख धनिकों को दुर्लभ है।

2. सदैव स्वस्थचित्त होकर ही खाना चाहिए।

आहार और पाचन-क्रिया पर चित्त-दशा का प्रभाव पड़ता है। बिना मन का खाया हुआ अन्न शरीर में नहीं लगता। मन से खाने पर साधारण पदार्थ भी तृप्तिदायक होता है। चित्त प्रसन्न रहने से पाचन- ग्रन्थियों द्वारा नियमित रूप से पाचन रस द्रवित होता है। चित्त की विकलता से अरुचि होती है; आहार बिना बुलाए हुए अतिथि की तरह पेट में पड़ा रहता है, कोई उसको पूछता नहीं।

चिन्ता, भय, मन की उद्विग्नता, ईर्ष्या, द्वेष और क्रोध आदि विकारों का तात्कालिक प्रभाव पाचन-क्रिया पर पड़ता है। चिन्ता में आहार निष्फल जाता है, इसको तो आप किसी विरही की दशा देखकर समझ सकते हैं। आप स्वयं अनुभव करके देख सकते हैं कि किसी विषय पर देर तक चिन्ता करने से बार-बार मूत्र विसर्जन करना पड़ता है। मधुमेह के प्रधान कारणों में अधिक मानसिक परिश्रम और चिन्ता ही है। अधिक चिन्ता और भय से सिर के बाल २४ घण्टों में सफेद होते सुने गए हैं। जब सम्पूर्ण शारीरिक स्वास्थ्य पर उसका इतना प्रभाव पड़ता है, तो आहार और पाचन-क्रिया पर क्यों न पड़ेगा? भय का प्रभाव तो और भी स्पष्ट होता है। आपने सुना होगा कि बहुत से लोग भय-ग्रस्त होने पर मल-मूत्र त्याग देते हैं। भयाक्रान्त होने पर भीतर के यंत्र अशक्त हो जाते हैं इसलिए खाए हुए पदार्थ को रोकने की शक्ति उनमें नहीं रहती। पाठ याद न करने पर अथवा अध्यापक की क्रूरता के भय से विद्यार्थी प्रायः पेशाब करने के लिए छुट्टी माँगते हैं। यह उनका बहाना ही

नहीं कहा जा सकता; वास्तव में उन्हें पेशाब की हाजत होती है। क्रोध आदि से पाचन क्रिया निश्चय ही बिगड़ जाती है क्योंकि क्रोध से रक्त उत्तेजित होता है, उसका दबाव बढ़ता है और वह पाचनयंत्र से हटकर मस्तिष्क में संचित हो जाता है। इससे आहार का पाचन नहीं होता क्योंकि इन्द्रियाँ निर्बल होती हैं और क्षुधा-शक्ति क्षीण हो जाती है। महर्षि सुश्रुत का यह वचन मानने योग्य है-

ईर्ष्याभयक्रोधपरीक्षितेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिणामतेति।।

(सुश्रुत संहिता)

ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ, चिन्ता, दैन्य तथा द्वेष से पीड़ित मनुष्यों द्वारा खाया हुआ भोजन ठीक से नहीं पचता। स्नानादि करके और हाथ-पैर धोकर भोजनगृह में खाने का जो प्राचीन नियम है, उसका उद्देश्य बाह्य शुद्धता ही नहीं आन्तरिक शान्ति भी है। मनुष्य जब शान्तचित्त होकर ऐसे वातावरण में बैठकर भोजन करता है जहाँ अन्य आकर्षण नहीं होते, तो चित्त भोजन में लगा रहता है। अकेले भोजन करने की अपेक्षा कुछ साथियों और सहवर्गियों के साथ बैठकर भोजन करने में अधिक तृप्ति होती है, क्योंकि तब चित्त चिन्ताओं से मुक्त रहता है और लोग आमोद-प्रमोद के साथ खाते हैं। आन्तरिक तृप्ति एवं सन्तोष भोजन का विशेष प्रयोजन है। वह तृप्ति स्वादिष्ट भोजन से ही नहीं प्राप्त होती है। भोजन कैसा ही मधुर हो, किन्तु यदि गृहिणी कलहकारिणी हो तो उसका ठीक स्वाद न मिलेगा। भोजन देनेवाली सुशील और मृदु-भाषिणी हो तो रूखा-सूखा भोजन भी तृप्तिदायक होता है। मानसिक शान्ति-अशान्ति का ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। कर्कशा-नाथ तो घर में घुसते ही सशंकित रहता है कि पता नहीं आहार खाने को मिले या गालियाँ। वह भोजन को कम पचाता है और अपनी व्यथा को अधिक। मृदुला को विश्वास रहता है कि जो भी उसको मिलता है या मिलेगा वह सर्वोत्तम होगा, क्योंकि वह प्रेम से दिया जाएगा। प्रेम से बढ़कर पाचन रस कोई नहीं होता। मनुष्य खाद्य-पदार्थों का नहीं, मान-प्रतिष्ठा का भी भूखा रहनेवाला जीव होता है। किसी कंजूस आदमी के यहाँ बिना आदर-सत्कार से अच्छा खाना भी मिल जाए तो उससे चित्त नहीं भरता। साधारण किन्तु उदार

हृदय वाले व्यक्ति का रूखा-सूखा भोजन भी अतिथि को बड़ा सुस्वादु लगता है। कृष्ण ने विदुर का साग बड़े स्वाद के साथ खाया था। मनुष्य का भोजन ऐसा होना चाहिए जिससे उसका पेट नहीं, बल्कि चित्त भी भर सके।

आत्म-संतोष के लिए भी आवश्यक होता है कि अपने परिश्रम की कमाई का खाना खाया जाए। वह साधारण होकर भी बल और तेज की वृद्धि करता है। चोरी का धन पचता नहीं है, क्योंकि मानसिक ग्लानि उसको पचने के पहले ही गलाकर निस्सार कर देती है। लोभ से आत्मसंतोष नष्ट हो जाता है, इसलिए कभी तृप्ति नहीं होती और बिना तृप्ति का आहार व्यर्थ हो जाता है। इस सम्बन्ध में एक बात और याद रखने योग्य है। वह यह है कि भोजन की स्वच्छता, उसके रंग, गंध, रूप आदि का भी यथेष्ट प्रभाव चित्त-दशा पर पड़ता है। रुचि को जगाने के लिए आहार की इन विशेषताओं को ध्यान में रखना चाहिए। गन्दगी आदि से मन भड़क जाता है।

3. आहार-भक्षण करते समय उसको धीरे-धीरे चबाकर और अच्छी तरह मर्दित करके तब अंतड़ियों को सौंपना चाहिए।

खाने में शीघ्रता कभी हितकारी नहीं होती। यथा सम्भव सादा और मृदु आहार ही नियमित रूप से नियत समय पर खाना चाहिए। अधिक मिर्च-मसालों के उपयोग से जिह्वा को सुख अवश्य मिलता है, परन्तु अतड़ियों की दुर्दशा हो जाती है। उनसे रक्त की रूक्षता बढ़ती है, पाचन रस का अपव्यय और पुरुषार्थ का नाश होता है। यह भी याद रखना चाहिए कि अधिक नमक वैज्ञानिक दृष्टि से पुरुषार्थ-नाशक होता है। मिर्च-मसालों और नमकीन वस्तुओं के विशेष उपयोग से जल अधिक पीना पड़ता है। भोजन के समय और उसके उपरान्त अधिक जल पीने से पाचन सामग्री पतली हो जाती है और पाचन रस स्वयं इतना पतला हो जाता है कि भोजन ठीक से नहीं पचता। इसलिए थोड़ा-थोड़ा करके पानी पीना चाहिए और ऐसा आहार लेना चाहिए जो अधिक पानी न माँगे-

'मुहुर्मुहुर्वरि पिवेदभूरि' (भावप्रकाश)

4. भोजन के बाद शारीरिक और मानसिक परिश्रम से बचना चाहिए।

जब खाना पचने लगता है तो शरीर का रक्त प्रसार मुख्यतः अंतड़ियों पर होता है। अन्य अंगों में, मुख्यतः मस्तिष्क में रक्त की कमी हो जाती है जिसके कारण सुस्ती, ठंडक और ऊँचाई आदि का अनुभव होता है। उस दशा में शारीरिक या मानसिक परिश्रम करने से रक्त पाचन-यंत्रों को सहयोग देना छोड़कर अन्य पेशियों की ओर भागता है, जिसके कारण ठीक पाचन नहीं हो पाता। इसलिए सुश्रुत ने कहा है कि खाने के बाद जब तक अन्न का भारीपन रहे, तब तक राजा की तरह (निश्चिन्त होकर) विश्राम करें, उसके बाद सौ पग चलकर बाईं करवट लेटना चाहिए।

भुक्त्वा राजवदासीत यावदन्नक्लमो गतः।
ततः पादशतं गत्वा वामपार्श्वेन संविशेत्॥

(सुश्रुतसंहिता)

आजकल स्वास्थ्य-नाश का एक मुख्य कारण यह है कि लोग खाने के बाद प्रायः काम में लग जाते हैं। बाबू, विद्यार्थी, व्यापारी आदि खाने के बाद दौड़ते हैं और फिर मानसिक परिश्रम करते हैं। इससे भोजन ठीक तरह से नहीं पचता और परिणाम होता है- अजीर्णता, कोष्ठबद्धता तथा शक्ति क्षय। संस्कृत की प्राचीन लोकोक्ति है कि जो भोजन के बाद दौड़ता है उसके पीछे मृत्यु दौड़ती है- **'मृत्युर्धावति धावतः।'**

5. भोजन के बाद शरीर में कफ बढ़ता है।

इसीलिए सुश्रुत ने लिखा है कि उसको दबाने के लिए बुद्धिमान को उचित है कि वह पान, धूम्रपान, कपूर, लौंग या कषाय, कटु, तिक्त पदार्थों का सेवन करे। सुश्रुत ने यह भी लिखा है कि भोजन के बाद चित्तवृत्ति को बिगाड़ने वाले शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श से बचना चाहिए।

लेखक- आनन्द कुमार
साभार- आत्मविकास

सत्यार्थ सौरभ की रजिस्टर्ड पोस्टल सेवा

सत्यार्थ सौरभ के सम्मानित सदस्यगण! हमें पता है कि आप लोगों को सत्यार्थ सौरभ पत्रिका या तो समय से नहीं मिलती है या फिर मिलती ही नहीं है। इसलिए न्यास ने एक निर्णय लिया है कि अगर आप एक वर्ष में रुपये 264/- (Postage हेतु) देते हैं तो आपको पत्रिका रजिस्टर्ड भेजी जाएगी। ताकि फिर भी पत्रिका प्राप्त नहीं होती है तो आप पोस्ट ऑफीस में शिकायत दर्ज करवा सकते हैं जिससे ये समस्या सुलझ सकती है।

पत्रिका से सम्बन्धित किसी प्रकार की जानकारी/शिकायत के लिये निम्न चलभाष पर सम्पर्क करें।
09314535379

पाठकों के पास 'सत्यार्थ सौरभ' डाक विभाग की अव्यवस्था के कारण अनेक बार समय पर नहीं पहुँच पाती है। पाठक न्यास को ही दोषी मानते हैं, जिसे अनुचित भी नहीं कहा जा सकता। परन्तु वास्तविकता है कि यहाँ से प्रत्येक माह की 7 तारीख को पत्रिका प्रेषित कर दी जाती है। पश्चात् सब कुछ डाक विभाग की कृपा पर निर्भर करता है। फिर भी आपसे निवेदन है कि प्रत्येक माह की 20 तारीख तक भी पत्रिका न मिलने पर कृपया इसी चलभाष पर सम्पर्क करें।

- सम्पादक

कहानी दयानन्द की

कथा सरित

कासगंज से प्रस्थान करने के पश्चात् स्वामी जी महाराज अनूपशहर पहुँचे। उन दिनों में अनूपशहर में रामलीला हो रही थी। परन्तु स्वामी जी इस प्रकार की लीलाओं के विरुद्ध थे। ये लीलाएँ करवाने वाला कल्याणसिंह नाम का वहाँ का एक नायब तहसीलदार था। राम लीलाओं के खण्डन के कारण यह कल्याण सिंह स्वामी जी के विरुद्ध हो गया। और स्वामी जी को नीचा दिखाने का प्रयास करने लगा। परन्तु उसके सारे प्रयत्न व्यर्थ चले गए। स्वामी जी इन दिनों जीवित पितरों के श्राद्ध का समर्थन करते थे। गोरक्षा को लेकर के भी उनका मन आन्दोलित रहता था और वे अकसर कहा करते थे कि अवसर मिलने पर विलायत जाकर महारानी विक्टोरिया और राज्य परिषद् के सदस्यों को समझाकर गोवध बंद कराने का प्रयास करेंगे। स्वामीजी वेदों के आधुनिक भाष्यों को अशुद्ध बताते थे और महीधर के भाष्य का विशेष खण्डन किया करते थे। स्वामी जी की निडरता, निर्भीकता इसी बात से प्रकट होती थी कि वे अंग्रेजों की न्याय व्यवस्था पर दोषारोपण करते थे।

यहाँ सैयद मोहम्मद नाम के एक तहसीलदार स्वामी जी के अनन्य भक्त हो गए। एक दिन उन्होंने कहा कि हमारे धर्म में मूर्तिपूजा नहीं है। उन्होंने ये सोच कर कहा था कि स्वामी जी मूर्तिपूजा के विरुद्ध हैं, इसलिए मेरी प्रशंसा या हमारे धर्म की प्रशंसा करेंगे। परन्तु उसके विपरीत स्वामी जी ने कहा कि ताजिया बनाना भी एक प्रकार की मूर्तिपूजा है। इस बात को तहसीलदार साहब ने स्वीकार किया।

यहीं पर एक घटना हुई कि एक ब्राह्मण ने मूर्तिपूजा के खण्डन से रुष्ट होकर के स्वामी जी को पान में विष दे दिया। जिसे स्वामी जी ने न्योली क्रिया करके निकाल दिया और स्वस्थ हो गए। परन्तु सैय्यद मोहम्मद को जब यह पता चला तो वो उस व्यक्ति को कैद करके ले आया और स्वामी जी के पास इस आशय से लेकर के आया कि स्वामी जी प्रसन्न होंगे। परन्तु स्वामी जी ने कहा कि मैं संसार को कैद कराने नहीं वरन् कैद से छुड़ाने आया हूँ। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते, तो हम अपनी श्रेष्ठता क्यों छोड़ें? इस पर तहसीलदार साहब ने उस ब्राह्मण को छुड़वा दिया।

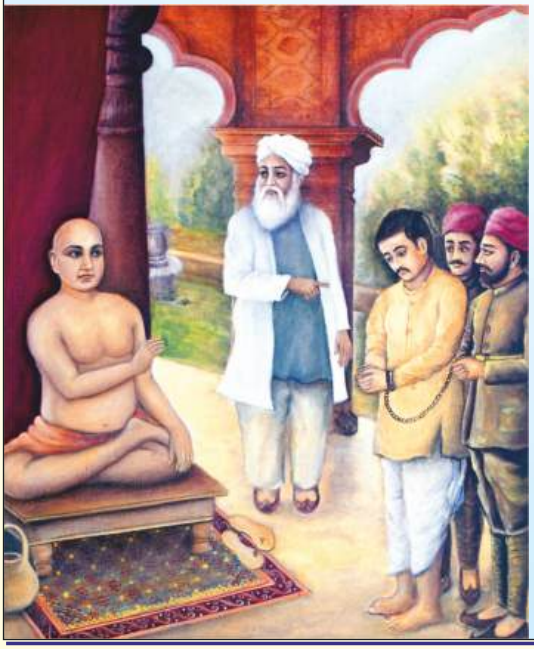

महर्षि के जीवन-चरित्र के लेखक देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय बड़े ही भावुक रूप से लिखते हैं- ओह! दयानन्द दया प्राण दयानन्द! तू वास्तव में दया का अवतार था। साधारण मनुष्य किसी से थोड़ी सी भी क्षति उठाकर, तनिक से अपकार के कारण अपने अनिष्टकर्त्ता की जान

के ग्राहक बन जाते हैं। उनमें प्रतिहिंसा के प्रबल भाव जागृत हो जाते हैं। परन्तु एक तू है कि अपने प्राणघातक को भी हानि पहुँचाना नहीं चाहता और जब कभी कोई उसके दुष्कर्म के कारण उसे हानि पहुँचाता है तो तुझे उसकी दशा पर तरस आता है। और तू एक क्षण भी तो उस दशा में उसको देख नहीं सकता। इस कलहपूर्ण, विद्वेषपूर्ण, हिंसापूर्ण, निर्दयता पूर्ण संसार में मनुष्यों के सामने ये स्वर्गीय दृश्य तेरे सिवाय और कौन ला सकता था? तेरे इन अलौकिक वृत्तों को देख करके हृदय गद्‌गद् हो जाता है और मनुष्य तेरे चरणों में श्रद्धा की पुष्पांजलि चढ़ाने पर विवश हो जाता है।

स्वामी जी जिन बातों को सिद्धान्त रूप में प्रतिपादित करते थे उन्हें अपने जीवन में अपनाते भी थे। सभी जानते हैं कि श्रीमहाराज जन्मगत जाति-पांति और अस्पृश्यता के विरुद्ध थे। अनूपशहर में ही एक नाई स्वामी जी के लिए बड़े प्रेम से भोजन लेकर आया। लोगों ने उस भोजन को ग्रहण करने का निषेध किया क्योंकि वह व्यक्ति तथाकथित नीची जाति से था। नाई था। लोगों ने कहा कि महाराज यह नाई की रोटी है, इसे कदापि ग्रहण न करें। परन्तु मनुष्य समाज की समता के प्रबल विश्वासी दयानन्द किंचित मुस्कुराते हुए यह कहकर कि यह तो गेहूँ की रोटी है, प्रेम से ग्रहण कर लेते हैं। भोजन लाने वाला गरीब परन्तु परम स्नेही व्यक्ति आँखों में अश्रु लिए हुए स्वामी जी के गुणगान करता हुआ उनके चरण स्पर्श कर वहाँ से चला जाता है।

प्रस्तुति- नवनीत आर्य
नवलखा महल, उदयपुर

सत्यार्थ मित्र बनें

न्यास के कार्यों को गति प्रदान करने के लिए 5100 रु. (पाँच हजार एक सौ) वार्षिक का सहयोग प्रदान करें।

आपका मात्र ५१०० रुपये वार्षिक का सहयोग न्यास के कार्य को अद्वितीय गति प्रदान कर सकता है।

हमारे अत्यन्त आत्मीय बन्धुजन!

इस अपील को मेरी व्यक्तिगत अपील कहिए अथवा न्यास की अपील समझिए। यह आप तक पहुँचे और आपकी आत्मीयता हमें प्राप्त हो, इसी नाते हम प्रथम बार अर्थ सहयोग का निवेदन कर रहे हैं।

आपको यह जानकारी होगी ही कि नवीन, आकर्षक प्रकल्पों का निर्माण कर न्यास सहस्रों लोगों तक वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्वों को अग्रप्रसारित कर रहा है। सत्यार्थ प्रकाश भवन, नवलखा महल, उदयपुर द्वारा आर्यावर्त्त चित्रदीर्घा में वेद, वेद के प्रादुर्भाव, भारतीय ऋषियों के योगदान, योगिराज श्री कृष्ण और भगवान राम के पावन जीवन–चरित्र, मेवाड़ की माटी के गौरव महाराणा प्रताप, आर्यसमाज के रत्नों, भारत को स्वतन्त्रता दिलाने वाले क्रान्तिकारियों, सत्यार्थ प्रकाश चित्रावली एवं महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र के माध्यम से व संस्कार वीथिका के माध्यम से मानव निर्माण की पूरी योजना आगन्तुकों के सामने रखी जा रही है। इस क्रम में मानों महर्षिवर की संस्कार विधि मूर्तरूप में चित्रित हो गयी है।

वहीं उच्चतम गुणवत्ता के 3D थियेटर का निर्माण कर महापुरुषों के जीवन–चरित्र का दिग्दर्शन भी कराया जा रहा है। यहाँ यह अंकित करना आवश्यक है कि मुक्त हस्त से दिए हुए उदार अर्थ के सहयोग से भव्य संस्कार वीथिका परिसर व थियेटर का निर्माण माननीय सुरेश चन्द्र जी आर्य; अहमदाबाद और माननीय दीनदयाल जी गुप्त; कोलकाता के पवित्र सहयोग से हो पाया है एवं संस्कारों का निर्माण आर्यजनों के सामूहिक सहयोग से एकत्रित धन से हुआ है। परन्तु इनको गति देने के लिए, वर्ष में सारे प्रकल्प 365 दिन गतिशील रहें, इसके लिए आवश्यक है कि कुछ लोग आगे आएँ और प्रतिवर्ष अपना योगदान दें, इसीलिए आपसे यह निवेदन कर रहा हूँ। **मैं व्यक्तिगत रूप से अनुगृहीत होऊँगा अगर आप मात्र 5100 सौ रुपये प्रतिवर्ष देने का संकल्प लेंगे।** न्यास का एकाउन्ट नम्बर भी नीचे अंकित है। न्यास को प्रदत्त दान आयकर अधिनियम की धारा 80G के अन्तर्गत कर मुक्त है।

हमें आशा ही नहीं विश्वास है कि आप हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर 5100 रुपये वार्षिक का यह अर्थ सहयोग प्रदान करने की कृपा करेंगे। **निश्चित मानिये आपके सहयोग से जो ऊर्जा और गति हमें मिलेगी वह लाखों लोगों तक वैदिक संस्कृति के उदात्त मूल्यों को सम्प्रेषित करने में मील का पत्थर साबित होगी।**

निवेदक- अशोक आर्य, अध्यक्ष-न्यास

चैक श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास के पक्ष में बना न्यास के पते पर भेजें। अथवा यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, मेन ब्रांच, दिल्ली गेट, उदयपुर बैंक एकाउन्ट का विवरण: AC. No.: 310102010041518, IFSC CODE- UBIN 0531014, MICR CODE- 313026001 में जमा करा कृपया सूचित करें।

समाचार

महर्षि दयानन्द सरस्वती की 200वीं जयन्ती के सम्मान में स्मारक डाक टिकट का अनावरण

नई दिल्ली, १५ दिसम्बर, २०२४: भारत के सबसे प्रभावशाली सांस्कृतिक और सामाजिक संगठनों में से एक आर्य समाज ने १५ दिसम्बर, २०२४ को भारत मंडपम, नई दिल्ली में आयोजित एक भव्य कार्यक्रम के साथ आधिकारिक तौर पर अपने १५०वें स्थापना दिवस समारोह का शुभारम्भ किया। इस अवसर का उद्घाटन माननीय रक्षा मंत्री श्री राजनाथ सिंह ने एक प्रतिष्ठित सभा की उपस्थिति में किया। गुजरात के महामहिम राज्यपाल आचार्य देवव्रत जी ने विशेष अतिथि के

रूप में कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा १८७५ में मुम्बई में स्थापित, आर्य समाज ने पूरे भारत और दुनिया भर में शिक्षा, सामाजिक सुधार और सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संगठन ने ४० से अधिक देशों में अपनी पहुँच का विस्तार किया है और स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, गुरुकुल, अनाथालय, महिला आश्रय और अस्पताल जैसी विविध कल्याणकारी गतिविधियों में लगी लगभग १५,००० इकाइयों का संचालन करता है। कार्यक्रम के दौरान, जेबीएम समूह के अध्यक्ष श्री सुरेन्द्र कुमार आर्य ने मुख्य भाषण दिया, जिसमें आर्य समाज की विरासत और मानवता की सेवा के लिए इसके निरन्तर प्रयासों पर प्रकाश डाला गया। कार्यक्रम में देश भर से प्रमुख गणमान्य व्यक्तियों, आर्य समाज के पदाधिकारियों, विद्वानों, संन्यासियों और आर्य संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस समारोह का एक मुख्य आकर्षण भारत सरकार के डाक विभाग द्वारा जारी महर्षि दयानन्द सरस्वती की २००वीं जयन्ती के सम्मान में एक स्मारक डाक टिकट का अनावरण था। यह टिकट महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं के स्थायी प्रभाव और भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका का जश्न मनाता है। इस कार्यक्रम के दौरान आर्य समाज द्वारा कई प्रस्ताव भी पारित किए गए।

१. वक्फ बोर्ड संशोधन विधेयक का समर्थनः आर्य समाज ने न्याय संगत शासन के लिए इसके महत्व को पहचानते हुए संशोधन के लिए अपना पुरजोर समर्थन व्यक्त किया।

२. बांग्लादेश में हिन्दुओं और अल्पसंख्यकों पर अत्याचार पर चिन्ताः आर्य समाज ने बांग्लादेश में हिन्दुओं और अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न के बारे में गम्भीर चिन्ता व्यक्त की और भारत सरकार से इस मुद्दे को हल करने के लिए ठोस कदम उठाने का आग्रह किया।

३. जाति आधारित जनगणना का विरोधः आर्य समाज ने घोषणा की कि जाति आधारित जनगणना राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिए गम्भीर खतरा है।

४. 'हाशिये पर पड़े लोगों को गले लगाओ' अभियानः सामाजिक असमानता की खाई को पाटने के लिए, आर्य समाज ने समाज के सबसे हाशिये पर पड़े वर्गों के उत्थान और एकीकरण पर केन्द्रित एक अभियान की घोषणा की।

५. 'रिश्ते बचाओ, देश बचाओ' अभियानः पारिवारिक बन्धनों के टूटने को जनसांख्यिकीय और सामाजिक जोखिम के रूप में पहचानते हुए, आर्य समाज देश के लिए एक संतुलित और स्थिर भविष्य सुनिश्चित करने के लिए रिश्तों के संरक्षण की वकालत कर रहा है। आर्य समाज का १५०वाँ स्थापना दिवस समारोह आने वाले पूरे वर्ष जारी रहेगा, जिसमें भारत और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक कार्यक्रमों की योजना बनाई गई है, जो शिक्षा, सामाजिक कल्याण और सांस्कृतिक संरक्षण के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को मजबूत करेगा।

स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस और वीर बाल दिवस आयोजित

आर्य समाज हिरण मगरी; उदयपुर द्वारा २३ दिसम्बर २०२४ को अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस और वीर बाल दिवस का आयोजन समाज द्वारा संचालित सेक्टर ४ स्थित दयानन्द कन्या विद्यालय में संरक्षक प्रो. डॉ. अमृत लाल तापड़िया की अध्यक्षता में किया गया।

कार्यक्रम में शिक्षाविद् अलका मेहता ने आह्वान किया कि वीर बलिदानी बालक जोरावर सिंह और फतह सिंह की भाँति ही धर्म के प्रति अडिग रहना चाहिए भले ही धर्म के लिए प्राणों को ही न्योछावर करना पड़े। शिक्षिका मनीषा यदुवंशी ने अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती के प्रेरक जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आर्य समाज के सुदृढ़ स्तम्भ के रूप में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था पुनः स्थापित करने, जातिवाद और छुआछूत को दूर करने, बालिका शिक्षा को बढ़ाने, शुद्धि आन्दोलन द्वारा धर्मांतरण रोकने, राष्ट्र भक्ति की भावना को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। समाज की उपमंत्री सरला गुप्ता ने कहा कि नवीन पीढ़ी को किसी भी लालच और भय में न आकर सत्य सनातन वैदिक धर्म का संवर्द्धन कर पूरे विश्व को मानवता के मार्ग पर लाने हेतु संकल्प लेना होगा। सभासद् डॉ. भूपेंद्र शर्मा ने विद्यार्थियों को हर चुनौती का सामना करते हुए राष्ट्र और धर्म की रक्षार्थ सतत् पुरुषार्थ करने हेतु प्रेरित किया। साक्षी चौहान, मुस्कान, दीक्षिता, हेमलता पटेल ने अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती के जीवन के प्रेरक प्रसंग सुनाए। विद्यालय की समस्त प्रतिभागी छात्राओं को विद्यालय निदेशक पुष्पा सिंधी, कोषाध्यक्ष ललिता मेहरा, प्रधान भँवर लाल आर्य, वेद मित्र आर्य, रमेश चन्द्र जायसवाल, राजकुमार गुप्ता ने स्मृति चिह्न भेंट किए। अध्यक्षीय उद्बोधन में समाज संरक्षक शिक्षाविद् प्रो. डॉ. अमृत लाल तापड़िया ने अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती के जीवन के प्रेरक प्रसंगों पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा कि वे बहुमुखी प्रतिभा के प्रखर व्यक्तित्व थे। उनकी सत्यनिष्ठा और प्रतिज्ञा पालन के गुणों ने उन्हें मुंशीराम से भारत के एक माननीय नेता स्वामी श्रद्धानन्द के रूप में बदल दिया। आभार विद्यालय मंत्री कृष्ण कुमार सोनी ने ज्ञापित किया। मंच संचालन विद्यालय प्रधानाचार्या प्रेमलता मेनारिया ने किया।

- कृष्ण कुमार सोनी, उप प्रधान

ज्ञान ज्योति महापर्व- नेमदारगंज
26 नवम्बर से 01 दिसम्बर तक गाँव गूँजता रहा

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वि शताब्दी जन्ममहोत्सव एवं आर्य समाज स्थापना की १५०वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में आर्य समाज नेमदारगंज (नवादा; बिहार) ने अपने स्थापना के १०७वें वर्ष में नवादा जिला आर्य सभा के संयोजन में ज्ञान ज्योति महापर्व सह पंच महायज्ञ धर्म अनुष्ठान का दिनांक २८ नवम्बर से ०१ दिसम्बर तक का आयोजन किया। जिसमें २६ नवम्बर से ०१ दिसम्बर तक के लिये आर्य वीर दल का प्रशिक्षण शिविर भी आयोजित था।

दिनांक २८ नवम्बर २०२४ को अपराह्न २ बजे से शोभायात्रा निकाली गई। जिसका नेतृत्व श्री संजय सत्यार्थी एवं श्री अशोक आर्य जी बिहार श्री ने किया। आर्य वीर दल के प्रशिक्षुगण, आगत अतिथिगण, स्थानीय जिला सभा के पदाधिकारीगण, ग्रामीण स्त्री-पुरुष-युवाओं ने जयकारा एवं आर्य समाज अमर रहे के नारे लगाते पूरे नगर का परिभ्रमण किया। गाँव की गलियों में छतों पर से पुष्प वृष्टि एवं माल्यार्पण से स्वागत किया गया।

उद्घाटन सत्र में मंच पर सभी वरिष्ठ जन एकत्र हुये। दीप प्रज्ज्वलन का कार्य श्री गंगा बाबू, श्री विनय आर्य, आचार्य डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री, श्री के. के. सिन्हा डायरेक्टर डी. ए. वी. बेगूसराय जोन, बहन प्रीति विमर्शिनी जी ने सम्मिलित रूप से पंचमुखी दीप को प्रज्ज्वलित करके किया।

इस अवसर पर श्री संजय सत्यार्थी द्वारा सम्पादित "बिहार में आर्य

समाज का पर्दापण" पुस्तक का लोकार्पण किया गया।

दिल्ली से पधारे श्री विनय आर्य जी ने धर्मान्तरण की समस्या को उजागर करते हुये आर्यों को सचेत किया कि तथाकथित हिन्दुओं द्वारा अपने अन्त्यज भाईयों को सम्मान नहीं देने, उपेक्षित रखने से दूसरे मत-पन्थों द्वारा धर्म परिवर्तन का दौर चलाया हुआ है फिर भी हम जातिगत भेदभाव का वातावरण बनाते रहते हैं। राजनीति के पुरोधा भी उसे बल देते रहते हैं, फलस्वरूप आर्य जाति सिमटती जा रही है। इस ओर तुरन्त ध्यान देने की जरूरत है।

आचार्य पण्डित ज्वलन्त शास्त्री जी ने कहा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मूर्तिपूजा से विरक्ति और बहन तथा चाचा की मृत्यु से वैराग्य पश्चात् विवाह के आयोजन से पलायन करने वाले ऋषि के जीवन और कष्टों तथा व्याकरण सूर्य गुरु विरजानन्द से प्राप्त शिक्षा उपरान्त गुरु दक्षिणा में जीवन अर्पण करके सबके कल्याण का कार्य किया है।

अन्तिम दिवस ०१ दिसम्बर को यज्ञशाला के अतिरिक्त छः कुण्डों पर ३० यजमान दम्पत्तियों ने उपस्थित होकर तन्मयता पूर्वक अथर्ववेद के सौ मन्त्रों से सामान्य यज्ञोपरान्त आहुतियाँ देकर वातावरण को सुवासित किया।

आर्य वीर दल द्वारा सजे पाण्डाल में व्यायाम प्रदर्शन, लाठी के करतब, तलवार का प्रयोग, सुरक्षा के मार्शल आर्ट, स्तूप संरचना, मानव पुल निर्माण, आरोह-अवरोह के कुशल सैन्य व्यवस्था आदि सिखों द्वारा प्रयुक्त गेन्द एवं छूरे से सज्जित गोल गुम्बद का प्रयोग के कौशल का प्रदर्शन किया, जिसे देख उपस्थित जन समूह ने दाँतो तले अंगुली दबाई।

इस अवसर पर यज्ञ का आयोजन डॉ. प्रीति विमर्शिनी के ब्रह्मत्व में हुआ। श्री सत्यदेव शास्त्री, बरेली श्री जगत् वर्मा जी, जालन्धर ने अपने सुमधुर संगीत से सभी का मन मोह लिया। बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा के सम्माननीय महामंत्री श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता जी ने उपस्थित होकर आर्यों को सद्प्रेरणा दी।

श्री सुरेश चन्द्र आर्य प्रधान सार्वदेशिक सभा-दिल्ली एवं श्रीयुत् सुरेन्द्र कुमार आर्य डायरेक्टर जे.बी.एम. ग्रुप ने एक एक लाख रूपये का सहयोग तथा आशीर्वाद प्रदान कर छोटे से समाज की रीढ़ बनने का सौभाग्य प्रदान किया।

- सत्यदेव प्रसाद आर्य 'मरुत', संरक्षक

महर्षि वाल्मीकि प्रणीत
प्रामाणिक राम चरित्र

भगवान श्री राम का
प्रामाणिक जीवन चरित्र

शुद्ध रामायण

प्रक्षेपों का
सप्रमाण निराकरण

तर्क, बुद्धि, विज्ञान और
इतिहास, के आधार पर
जानें, मानें और अनुसरण
करें भगवान श्री राम के
पावन चरित्र का

आचार्य प्रेमभिक्षु

Best seller from Acharya Prembhikshu

Hard bound ₹320 Paper' back ₹250

Order now Free Postage

श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास,गुलाब बाग उदयपुर

Contact 9314535379

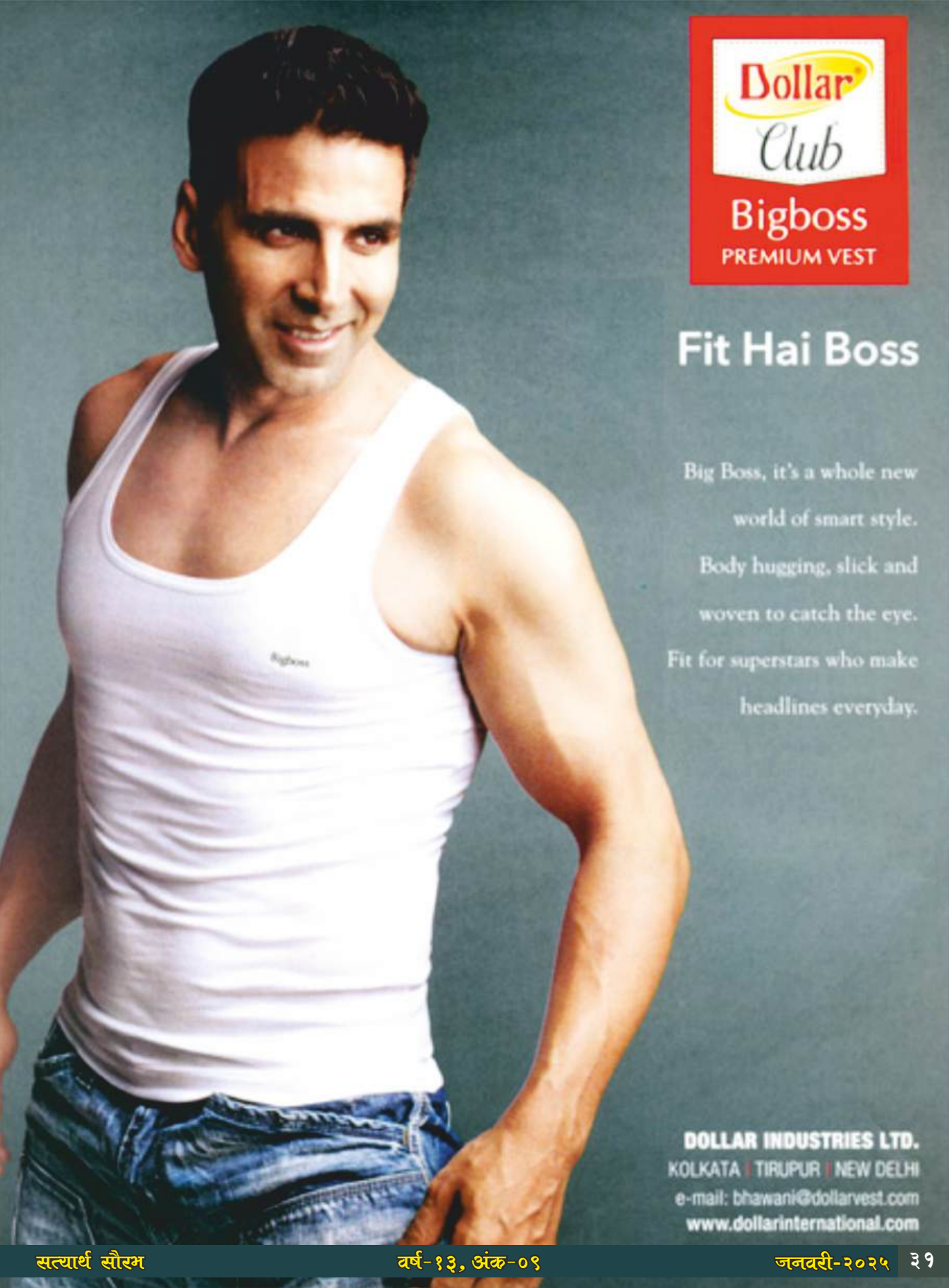

Dollar
Club
Bigboss
PREMIUM VEST
Fit Hai Boss
Big Boss, it's a whole new world of smart style. Body hugging, slick and woven to catch the eye. Fit for superstars who make headlines everyday.
DOLLAR INDUSTRIES LTD.
KOLKATA | TIRUPUR | NEW DELHI
e-mail: bhawani@dollarvest.com
www.dollarinternational.com

देह और अन्तःकरण जड़ हैं। उनको शीतोष्ण प्राप्ति और भोग नहीं है। जैसे पत्थर को शीत और उष्ण का भान वा भोग नहीं है। जो चेतन मनुष्यादि प्राणी उसका स्पर्श करता है, उसी को शीत-उष्ण का भान और भोग होता है। वैसे प्राण भी जड़ हैं, न उनको भूख, न पिपासा। किन्तु प्राण वाले जीव को क्षुधा-तृषा लगती है। वैसे ही मन भी जड़ है, न उसको हर्ष, न शोक हो सकता है। किन्तु मन से हर्ष शोक दुःख-सुख का भोग जीव करता है।

- सत्यार्थप्रकाश नवम समुल्लास पृष्ठ २३३

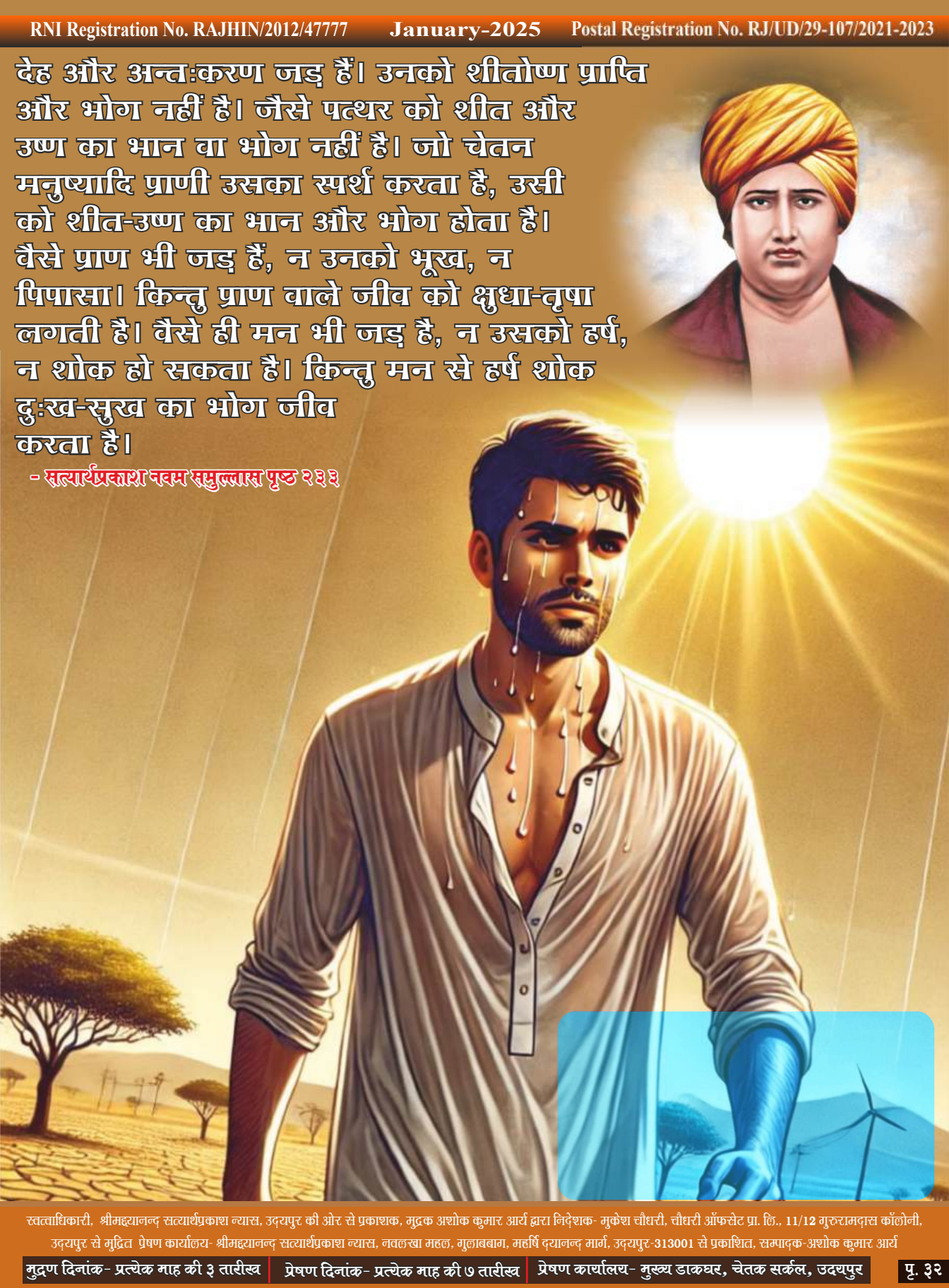

स्वत्वाधिकारी, श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, उदयपुर की ओर से प्रकाशक, मुद्रक अशोक कुमार आर्य द्वारा निदेशक- मुकेश चौधरी, चौधरी ऑफसेट प्रा. लि., 11/12 गुरुरामदास कॉलोनी, उदयपुर से मुद्रित प्रेषण कार्यालय- श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, नवलखा महल, गुलाबबाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, उदयपुर-313001 से प्रकाशित, सम्पादक-अशोक कुमार आर्य

मुद्रण दिनांक- प्रत्येक माह की ३ तारीख | प्रेषण दिनांक- प्रत्येक माह की ७ तारीख | प्रेषण कार्यालय- मुख्य डाकघर, चेतक सर्कल, उदयपुर